# भाषा विमर्श

कविता रस्तोगी

NRBC

# भाषा विमर्श

**डॉ. कविता रस्तोगी**
रीडर
भाषाविज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

**New Royal Book Company**
**Lucknow**

**First** Published : 2008



**ISBN: 978-81-89267-74-2**

PRINTED IN INDIA

*Published by:*

**New Royal Book Co.**

First Floor, Shah Trade Centre
32/16, Valmiki Marg, Lalbagh, Hazratganj
Lucknow- 226001
Tel: (0522) 2285607, 6570731

Published by Imran Mirza & Mirza Furqan Beg for New Royal Book Co., First Floor, Shah Trade Centre, 32/16, Valmiki Marg, Lalbagh Hazratganj, Lucknow- 226001. Typeset by Surabhi Business Point, and Printed at Northern Offset Press, Lucknow.

जीवन की समस्त कठिनाइयों का हँसकर
सामना करने की शिक्षा देने वाले पिता
श्री आर्य कुमार रस्तोगी को सादर समर्पित

# अपनी बात

नया-नया भाषाविज्ञान अध्यापन कार्य आरम्भ किया था, प्रायः लोगों से मिलने पर लगता वे इस विषय से परिचित ही नहीं हैं। कोई पूछता यह कौन सा विषय है? कोई कहता हिन्दी विभाग में हैं? इन्हीं प्रश्नों से विचलित हो अध्यापक जीवन का पहला आलेख लिखा- 'भाषाविज्ञान क्या है?' आज विकास के नाम पर भाषा का स्वरूप तीव्रता से बदलता नजर आ रहा है। विकास यात्रा के इस दौर से अनेक जनजातीय भाषाएँ गुजर रही हैं और प्रभुताशाली वर्ग की भाषाओं में संलयन के साथ उनकी अस्मिता समाप्त हो रही है। इस बिन्दु से जुड़े लेख आपको द्वितीय खण्ड में मिलेंगे लेकिन प्रथम खण्ड का यह लेख भारतवर्ष के विशाल क्षेत्र में बड़ी जनसंख्या द्वारा व्यवहृत भाषा हिन्दी की अस्मिता के प्रश्न को टटोलता है। माना सामाजिकता भाषा का अनिवार्य लक्षण है लेकिन क्या निजता नष्ट होने पर भाषा मृत नहीं हो जाती और उसका वक्ता भी अपनी पहचान नहीं खो बैठता! 'शब्द-निर्माण प्रक्रियाएँ - हिन्दी रूपरचना का संरचनात्मक प्रारूप' इस लेख में अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड द्वारा प्रतिपादित विश्लेषण पद्धति के आधार पर हिन्दी में कार्यरत नवीन शब्द निर्माण की प्रक्रियाओं को रेखांकित किया गया है। रंग शब्दावली से सम्बन्धित अगला लेख हिन्दी के रंग नामों के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ उनकी निर्माण प्रक्रिया, साहित्य में

उनके प्रयोग आदि पक्षों पर भी प्रकाश डालता है। बच्चे के जीवन में माता-पिता की अहम् भूमिका होती है और जाने-अनजाने माता-पिता बच्चों से जो कुछ कहते हैं वह उनके जीवन की सोच, कार्य करने के तरीके, जीवन-जीने की शैली ही नहीं वरन भावी पीढ़ी से व्यवहार के तरीके को भी प्रभावित करता है। माता-पिता द्वारा दिए गए संदेशों का विश्लेषण और उनका भाषा पर प्रभाव ही पुस्तक के अगले आलेख की विषय वस्तु है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के मूल में निहित एकता को रेखांकित करने वाला इस खण्ड का अन्तिम लेख भारत के भाषिक परिदृश्य पर प्रकाश डालता है।

खण्ड 'द्वितीय' के समस्त लेख पिथौरागढ़ जिले के सघन वनों में निवसित लुप्तप्राय हिमालयी जनजाति 'राजी' जिनकी भाषा का नाम भी 'राजी' है, को केन्द्र में रखकर लिखे गए हैं। इनमें राजी जनजाति एवं भाषा का सामान्य परिचय, उनकी भाषा पर आगत तत्वों का प्रभाव, आदान के कारण उत्पन्न भाषा संकट तथा समान संरचना वाली, नेपाल के राउते जनजाति की भाषा 'खामची' से राजी की तुलना आदि विषयों पर चर्चा की गई है। ये सभी शोधपत्र वर्ष 1998 से 2004 के बीच किए गए क्षेत्रीय कार्य के दौरान एकत्रित सामग्री के आधार पर लिखे गए हैं।

खण्ड 'तृतीय' पूर्णतः 'व्यतिरेकी अध्ययन' को समर्पित है। इस खण्ड के लेखों में हिन्दी-अंग्रेजी भाषाओं की संरचना में प्राप्त विविध विषमताओं का उल्लेख करते हुए इनमें प्राप्त विरोध के बिन्दुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। आशा है यह खण्ड अनुवाद एवं द्वितीय भाषा शिक्षण के क्षेत्र में रुचि रखने वाले विद्वानों एवं छात्रों के लिए उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करेगा। पुस्तक में संकलित कई लेख पूर्व में मानव, भाषा, गवेषणा जैसी

स्तरीय पत्रिकाओं में छप चुके हैं। कई लेख मूलतः अंग्रेजी में लिखे गये मेरे लेखों के अनुवाद हैं जिनके अंग्रेजी रूपों का प्रकाशन हो चुका है या उन्हें गोष्ठियों में प्रस्तुत किया जा चुका है।

अन्त में मैं पुस्तक के प्रणयन में सहायक समस्त मित्रों, शुभचिन्तकों और हितैषियों का आभार व्यक्त करना चाहूंगी। लेजर ग्राफिक्स के अधिष्ठाता मेरे अनुज तुल्य श्री कृष्णवेश पाण्डेय एवं उनके सहयोगियों का बहुत-बहुत धन्यवाद जिन्होंने पुस्तक के टंकण में अपना बहुमूल्य समय एवं सहयोग दिया। मैं आभारी हूँ कि न्यू रॉयल बुक कम्पनी ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार किया।

**लखनऊ - 2008** **कविता रस्तोगी**

# अनुक्रम


अपनी बात

**प्रथम खण्ड– सामान्य भाषा विज्ञान– 1-73**

1. भाषा की सामाजिकता 1-7
2. भाषाविज्ञान : एक परिचय 8-13
3. भाषा एवं संस्कृति का अन्तःसम्बन्ध 14-18
4. शब्द निर्माण प्रक्रियाएँ-हिन्दी रूपरचना का संरचनात्मक प्रारूप 19-24
5. हिन्दी रंग नामों का व्यवहार क्षेत्र 25-31
6. अभिभावकों द्वारा प्रयुक्त भाषा-एक समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन 32-41
7. भारतीय भाषिक परिदृश्य 42-47
8. भाषा आधुनिकीकरण-हिन्दी समाचार पत्र 48-59
9. अमरीकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान में अर्थ की भूमिका 60-66
10. हिन्दी विज्ञापन-आलेखात्मक विशेषताएँ 67-73

**द्वितीय खण्ड– जनजातीय भाषाविज्ञान 77-131**

11. भाषिक परसंस्कृतिग्रहण-राजी के सन्दर्भ में 77-83
12. क्या राजी एक लुप्तप्राय भाषा है? 84-93
13. भाषा परिवृत्ति और अनुरक्षण-जनजातीय भाषा 'राजी' 94-102
14. जनजातीय शिक्षा में मातृ भाषा की भूमिका 103-108
15. दो मध्य-पश्चिमी हिमालयी बोलियों में प्राप्त सांस्कृतिक एवं भाषिक समानताएँ 109-122
16. राजी व खामची की स्वनप्रक्रियात्मक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन 123-132

**तृतीय खण्ड- व्यतिरेकी भाषाविज्ञान** **135-182**

17. व्यतिरेकी विश्लेषण-संक्षिप्त परिचय 135-139

18. हिन्दी-अंग्रेजी की बंधुतावाची शब्दावली का व्यतिरेकी विश्लेषण 140-151

19. हिन्दी-अंग्रेजी की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ - व्यतिरेकी अध्ययन 152-160

20. हिन्दी-अंग्रेजी की लिंग व्यवस्था-व्यतिरेकी अध्ययन 161-169

21. हिन्दी-अंग्रेजी वचन व्यवस्था-व्यतिरेकी विश्लेषण 170-176

22. कोशीय समतुल्यता की समस्याएँ-अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद के सन्दर्भ में 177182

**सहायक ग्रन्थ** **183-186**

# खण्ड - 1 सामान्य भाषाविज्ञान

- भाषा की सामाजिकता
- भाषाविज्ञान : एक परिचय
- भाषा एवं संस्कृति का अन्तःसम्बन्ध
- शब्द निर्माण प्रक्रियाएँ - हिन्दी रूपरचना का संरचनात्मक प्रारूप
- हिन्दी रंग नामों का व्यवहार क्षेत्र
- अभिभावकों द्वारा प्रयुक्त भाषा - एक समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन
- भारतीय भाषिक परिदृश्य
- भाषा आधुनिकीकरण - हिन्दी समाचार पत्र
- अमरीकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान में अर्थ की भूमिका
- हिन्दी विज्ञापन - आलेखात्मक विशेषताएँ

# भाषा की सामाजिकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने वाला मानव पारस्परिक विचार विनिमय एवं सम्पर्क के लिए संकेत, स्पर्श आदि कई साधनों का प्रयोग करता है किन्तु इन सम्प्रेषण माध्यमों में प्रमुख एवं सर्वाधिक सक्षम भाषा है जिसके द्वारा मनुष्य अपने दैनन्दिन कार्य एवं सामाजिक व्यवहार का अधिकांश भाग सम्यक् रूपेण निष्पादित करता है। पशुओं की भाँति विश्रृंखल आदिम मानव भाषा के सूक्ष्म एवं सुदृढ़ सूत्र द्वारा ही परिवार, समूह, जाति की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई व्यवस्थाओं में संगठित होकर सभ्यता एवं संस्कृति के बहुमुखी विकास को दिशाओं में अग्रसर हुआ है। भाषा की उपलब्धि मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न प्रतिपादित कर उसे प्राणी से ऊपर उठा मानव बनाती है। इस विभूति का सृजन मानव उच्चारण सम्भूत अनेकानेक ध्वनियों में से कुछ निश्चित ध्वनियाँ करती हैं जिनसे भाषा के शब्द (प्रतीक) निर्मित होते हैं जो मनुष्य को चतुर्दिक व्याप्त वस्तुओं, घटनाओं, अनुभवों से परिचित कराते हैं। इसी तात्विक सत्य का उद्घाटन भर्तृहरि की निम्नलिखित पंक्तियाँ करती हैं :

> "न सो स्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
> अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।"

(वाक्यपदीय 1-123)

अथवा दार्शनिक शब्दावली में-

> "अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम् ।
> विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।"

(वाक्यपदीय 1-112)

ये भाषिक प्रतीक जहाँ किसी विशिष्ट स्वनिक संयोजन क्रम द्वारा सृजित होते हैं वहीं अर्थ विशेष को रूपायित भी करते हैं। भाषा में प्राप्त इस द्विविधता की चर्चा

महाकवि कालिदास ने भी की, यथा-

"वागर्थविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।

(रघुवंश 1/1)

भाषा और अर्थ का सम्बन्ध परिवर्तनीय, असहज एवं समाजाश्रित होता है। इसी कारण विविध भाषिक समाजों में किसी एक वस्तु या प्राणी को भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया जाता है जहाँ अंग्रेजी भाषी एक वस्तु विशेष को `tree' कहता है वहाँ हिन्दी भाषी 'पेड़' और संस्कृत ज्ञाता 'वृक्ष'। एक प्राणी विशेष जर्मन भाषी के लिए `hund' है तो वही प्राणी अंग्रेजी भाषी के लिए `dog' और हिन्दी वक्ता के लिए 'कुत्ता'। भाषिक प्रतीक एवं अर्थ का यह सम्बन्ध पारम्परिक और यादृच्छिक होते हुए भी निश्चित व व्यवस्थित होता है जिसका ज्ञान मनुष्य समाज में रहकर प्राप्त करता है। अतः मानव जन्म चाहे जिस भी परिवार में ले भाषा वही सीखता है जहाँ उसका लालन-पालन होता है। किसी मराठी माता-पिता की सन्तान का पालन-पोषण यदि हिन्दी भाषी परिवार में होगा तो वह बच्चा हिन्दी बोलेगा, मराठी नहीं। भाषार्जन के साथ-साथ भाषा प्रयोग भी समाज पर निर्भर करता है प्रयोग-स्थल के अभाव में भाषा का विकास बाधित होता है। यही कारण है कि वैयक्तिक प्रयोक्ताओं के होने पर भी ग्रीक, अवेस्ता, संस्कृत आदि वरेण्य भाषाएं आज मृत कहलाती हैं और इनका पठन-पाठन एवं प्रयोग विश्वविद्यालयों, संस्थानों और गोष्ठियों तक ही सीमित है। उन्नीसवीं शताब्दी में विद्वानों ने पूर्ण भाषा की कल्पना को साकार करने हेतु 'एस्परेन्तो' नामक कृत्रिम भाषा की रचना की जिसमें न केवल साहित्य सृजन किया गया बल्कि बोलचाल में भी जिसका प्रयोग हुआ किन्तु कुछ ही समय पश्चात् यह भाषा सामाजिकता के अभाव में विद्वानों के बुद्धि विलास का साधन बनकर रह गई। अस्तु भाषा की अस्मिता का स्रोत उसकी सामाजिकता है उसका विकास मूलतः प्राकृतिक एवं स्वैच्छिक आधार पर सामाजिक आवश्यकता से प्रेरित होता है। इससे यह तात्पर्य नहीं लिया जा सकता कि सिर्फ भाषा, समाज सापेक्ष है क्योंकि समाज भी अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर निर्भर करता है। किसी सामाजिक परिवेश में प्राप्त अनुभव, घटनाएँ, अनुभूतियाँ, मूल्य आदि उस समाज में प्रयुक्त भाषा के माध्यम से रूपायित होते हैं। प्रत्येक समाज का भिन्नता रखने वाला रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज भाषा में प्रतिबिम्बित होते हैं, जैसे - तटवर्ती प्रदेशों (केरल, बंगाल)

की भाषाओं की तुलना में मैदानी क्षेत्रों (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश) की भाषा हिन्दी में समुद्री जीवन से सम्बन्धित शब्द अल्प मात्रा में मिलते हैं। प्राचीन वैदिक समाज में यज्ञ आदि अनुष्ठानों से सम्बन्धित शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जैसे - समिधा आदि। जबकि तत्कालीन भाषा संस्कृत की पुत्री हिन्दी भाषा में ये शब्द नहीं हैं। कारण यह है कि आज यज्ञ, हवन हमारी दैनिक सामाजिक पद्धति के उतने महत्त्वपूर्ण अंग नहीं हैं। समाज की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक स्थितियाँ भी भाषा को प्रभावित करती रहती हैं। सामाजिक स्तर में विविधता भाषा रूप में भिन्नता लाती है और शिक्षा, व्यवसाय, आयु, लिंग के अनुरूप भाषा का स्वरूप परिवर्तित होता है। भाषा एक है समाज में उसके विविध रूप प्रयोग में आते हैं, जैसे- हिन्दी की अमां यार, अबे, खडूस आदि अभिव्यक्तियाँ युवावर्ग तक सीमित रहती हैं या 'ऊई मां', 'हाय दैय्या' जैसे प्रयोग सिर्फ स्त्री वर्ग करता है। इसी प्रकार कुछ अपशब्दों का प्रयोग आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग द्वारा ही किया जाता है जबकि सम्भ्रान्त व शिक्षित के लिए वे शब्द वर्जित समझे जाते हैं। इसी प्रकार विविध व्यवसाय से जुड़े व्यक्ति एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी इनमें इतनी भिन्नता होती है कि दूसरे वक्ता के लिए वह भाषा रूप पूर्णतः बोधगम्य नहीं होता है, जैसे- वकीलों की भाषा। स्पष्ट है कि कोई भी भाषा समाज की आवश्यकता एवं उन्नति के साथ विकसित एवं परिवर्धित होती है। यह मूलतः एक सामाजिक यथार्थ है जो सामाजिक उपकरणों एवं सन्दर्भों से जुड़कर ही व्यावहारिक और सार्थक बनती है। "उसने उससे उसके बारे में बात की" जैसे वाक्य पूर्व सन्दर्भ के अभाव में अर्थ स्पष्ट नहीं करते हैं। अतः कह सकते हैं कि भाषा की कोई निरपेक्ष या पूर्ण सत्ता नहीं है यह सदैव सामाजिक सम्पर्क व सीमाओं से आबद्ध रहती है और समाज में होने वाले आन्तरिक एवं बाह्य अन्तर्विरोध उसके स्वरूप को प्रभावित करते हैं। यह स्थिति समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाती है जिसके परिणामस्वरूप भाषा परिवर्तित होती है। इस प्रकार भाषा और समाज सिक्के के दो पार्श्वों की भाँति हैं जिन्हें एक दूसरे से विलग करना सम्भव नहीं होता है। ये एक बिन्दु से प्रारम्भ हो अन्त तक साथ-साथ चलते हैं और आद्यान्तः अन्योन्याश्रित रहते हैं।

आज के दशक में समाज के साथ प्रवाहमान एवं विकसित होती भाषा के नियोजन पर विचार करना भी अनिवार्य है क्योंकि सामाजिक होते हुए भी प्रत्येक भाषा की एक निजता एवं अस्मिता है जिस पर समस्त भाषा प्रयोक्ताओं को गर्व होता है

जो उन्हें एक सूत्र में बाँधती है। नियोजन अर्थात् जब विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम विकल्पों के चयन हेतु एक सुव्यवस्थित सचेत और सतत प्रयास किया जाए (वाटर्सन 1966:20)। भाषा के परिप्रेक्ष्य में नियोजन का मुख्य कार्य किसी भाषिक समुदाय के क्षेत्र को पहचानना और भाषा संसाधनों के सम्बन्ध में सुनियोजित कार्रवाई करना है (दास गुप्ता 1971:197)। फिशमैन ने भाषा के सामाजिक पक्ष का वर्णन 'कौन, किससे, कब और क्या' प्रश्नों के आधार पर किया। इसी शृंखला में 'क्यों और कैसे' प्रश्नों पर भी विचार किया जा सकता है जो नियोजन से संबद्ध हैं। कभी-कभी भाषा को व्यावहारिक एवं सरल बनाने के नाम पर उसकी निजता एवं अस्मिता पर घातक प्रहार किए जाते हैं और भाषा का शोषण होता है। आज हिन्दी के सन्दर्भ में यही स्थिति देखने को मिलती है। शिक्षित, आधुनिकता का जामा पहने गुलामी मानसिकता में जकड़े लोग हिन्दी के ऐसे रूप का प्रयोग करते हैं जो न हिन्दी भाषा है और न अंग्रेजी। किसी व्यक्ति की सामाजिक अस्मिता के दो आयाम होते हैं। कोई भी व्यक्ति दो धरातलों पर अपनी पहचान बनाने का प्रयास करता है। पहली पहचान अपने परिवार (व्यक्तिगत लघु समाज में) के बीच तथा दूसरी उस बृहत् समाज के मध्य, जहाँ भाषा के माध्यम से उसे शक्ति, प्रभुता प्राप्त होती है। वस्तुतः वह, सामाजिक अस्मिता दो या अधिक भाषाओं से स्थापित करता है। एक मातृभाषा, दूसरी वो जिससे वह स्वयं को बड़े समाज से जोड़ता है। आज अनेक हिन्दी बोलने वाले अपने परिवार में प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं और बाह्य समाज में हिन्दी के उस रूप का जो आवश्यक नहीं कि उसका मानक रूप हो, जैसे- "आज मेरी फ्रेन्डें लंच पर आ रही हैं"; "तुमने मेरी शूज़ पॉलिश कर दी"; तुम तुम्हारी बहन के घर क्यों नहीं गए? ज्यास्ती बोलने का नईं, खलास कर देगा; अपुन को ऐसा नई चलेगा; मैंने जाना है आदि आज के बहुप्रचलित प्रयोग हैं। माना कि इनमें से कई क्षेत्रीय भाषाओं के सम्पर्क से प्रभावित रूप हैं किन्तु क्या हिन्दी के साथ किया गया यह खिलवाड़ उचित है ? 'हिन्दी की जन-मानस की भाषा के रूप में स्वीकृति' विषय पर अनुसन्धान कर रहीं प्रो. अन्विता अब्बी का मानना है कि "सर्वमान्य हिन्दी एक समान या एक रूपी नहीं है। विज्ञापन की हिन्दी यदि अंग्रेजी मिश्रित है तो जन संपर्क की हिन्दी क्षेत्रीय भाषाओं से...... हिन्दी कई भाषाओं का समुच्चय रूप है...... भविष्य में करना हमें यह होगा कि हम हिन्दी के हर रूप की उपादेयता को समझें एवं उसके हर रूप का प्रयोग करें, विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में ताकि हर बोली एवं उपभाषा का पूरा-पूरा प्रयोग किया जा सके।" भाषाविद् होने के नाते मैं भी भाषा के व्यवहृत रूप को महत्त्व देती हूँ किन्तु भाषा का इतना

उत्पीड़न भी उचित नहीं कि उसकी निजता नष्ट हो जाए। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी के संरक्षण कर्ता सिर्फ "हिन्दी पखवाड़ा" मना अपने दायित्व की इतिश्री न समझे। अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब हम बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा सरीखे विद्वतजनों की प्रेयसी रही, भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा, नौ राज्यों की राजभाषा हिन्दी, जिसे विश्व में तृतीय स्थान प्राप्त है, को खो बैठेंगे। आज आवश्यकता भाषा में फैले इस प्रदूषण को रोकने के लिए सकारात्मक प्रयास करने की है। यह कह कर बचने का प्रयास न करें कि भाषा समाज सापेक्ष है समाज से बंधी है तो समाज का प्रदूषण इसे भी दूषित करेगा। समाज के निर्माता भी हम और आप ही हैं। आपसे विनम्र निवेदन है कि अपनी मातृभाषा के प्रयोग में झिझके या शर्माएं नहीं वरन् गर्व महसूस करें आपके द्वारा किया गया एक अकेला प्रयास भी गागर को भरने वाली बूँद का कार्य करेगा।

***

# भाषाविज्ञान : एक परिचय

आप में से कई सुधि पाठक सम्भवतः इस अध्ययन विषय के नाम से भी परिचित नहीं होंगे जिसको अंग्रेजी में 'लिंग्विस्टिक्स' एवं हिन्दी में 'भाषाविज्ञान' कहते हैं। भाषाविज्ञान शब्द दो शब्दो से मिलकर बना है भाषा एवं विज्ञान। भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है व्यक्त वाणी अर्थात् स्पष्ट एवं पूर्ण अभिव्यञ्जना। यहाँ कई प्रश्न किए जा सकते हैं कि भाषा क्या है? इसके अध्ययन की क्या आवश्यकता है? आदि। प्रथम प्रश्न का उत्तर व्यक्ति की योग्यता एवं क्षमतानुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है- हम जो बोल रहे हैं वह भाषा है; जिसके द्वारा हमारी बात दूसरों तक पहुँचे वह माध्यम भाषा है; किताब में लिखे हुए को पढ़ना भाषा है; अथवा हमारे भावों और विचारों को प्रकट करने वाला माध्यम भाषा है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मानव जो कुछ भी बोलता है वह सभी भाषा की परिधि में नहीं आता है, जैसे- मानव मुख से निकली तरह-तरह की आवाजें या सीटी बजाना। साथ ही मन्तव्य प्रकट करने के समस्त साधन भाषा नहीं कहलाते हैं। व्यक्ति स्पर्श और संकेत द्वारा भी अपने भाव प्रकट करता है किन्तु इनका क्षेत्र सीमित है और व्यक्त वाणी न होने के कारण सम्प्रेषण के ये साधन भाषा नहीं कहलाते हैं। मनुष्य मुख से असंख्य ध्वनियों का उच्चारण कर सकता है इनमें से कुछ निश्चित ध्वनियों द्वारा निर्मित व्यवस्था जिसका प्रयोग निश्चित समुदाय के सदस्य पारस्परिक विचार विमर्श एवं अन्तःप्रक्रिया के लिए करते हैं, भाषा कहलाती है। पशु पक्षियों की बोलियाँ, टेलिप्रिंटर द्वारा की गई विशिष्ट ध्वनियाँ आदि। यद्यपि निश्चित ध्वन्यात्मक संकेत व्यवस्थाएँ हैं तथापि ये भाषा नहीं अन्य संकेत व्यवस्थाएँ हैं। भाषा के लिए वक्ता एवं श्रोता की उपस्थिति एक अनिवार्य शर्त है और इसका प्रयोग सन्दर्भ निश्चित होता है अर्थात् आप अंग्रेजी का प्रयोग अंग्रेजी वक्ताओं के बीच तथा हिन्दी का प्रयोग हिन्दी वक्ताओं के बीच ही करते हैं। भाषा का यह प्रयोग-स्थान भाषिक समाज कहलाता है जिसके अभाव में भाषार्जन एवं प्रयोग दोनों असम्भव हैं।

आपने कभी ध्यान दिया है कि आप एक विशेष आकृति एवं गुण वाली वस्तु को ही 'फूल' क्यों कहते हैं? अथवा भाषा का कोई शब्द विशेष किसी वस्तु विशेष के लिए ही क्यों बोला जाता है? कारण यह है कि हमने परम्परा से यही सीखा है। यदि हमें 'फूल' के स्थान पर 'लूफ' शब्द सिखाया जाता तो हम वस्तु विशेष के लिए उसी का प्रयोग करते और हिन्दी भाषियों के मध्य वही प्रचलित होता। अतः कह सकते हैं कि भाषा पारम्परिक होती है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है किन्तु पारम्परिक होने पर भी भाषा का स्वरूप दृढ़ एवं स्थिर नहीं होता है। उसके कलेवर में अत्यन्त मन्द गति से परिवर्तन होते रहते हैं जो उसकी ध्वन्यात्मक संरचना (जैसे- आज मूर्धन्य 'ष' एवं तालव्य 'श' के उच्चारण में कोई भिन्नता नहीं है अथवा अंग्रेजी के बॉल, ऑफिस शब्दों के प्रभावस्वरूप हिन्दी में नवीन ध्वनि ऑ का विकास हुआ है), व्याकरणिक संरचना (आज अनेक हिन्दी भाषी 'मैं अपने घर जा रहा हूँ' वाक्य में 'अपने' के स्थान पर 'मेरे' शब्द का प्रयोग करते हैं) तथा आर्थी संरचना (यथा- आज स्याही शब्द का प्रयोग हरी, लाल, पीली सभी रंगों की स्याही के लिए किया जाता है जब कि प्रारम्भ में स्याह रंग के कारण वह स्याही कहलाती थी) को प्रभावित करते हैं। भाषा न केवल अपनी प्रकृति में जटिल और बहुस्तरीय होती है वरन् अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है। एक ओर व्यक्ति इसके द्वारा अपने निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का साधन भी यह ही है। यह हमारे मानसिक व्यापार का आधार होने के साथ-साथ हमारे सामाजिक व्यापार का साधन भी है। स्पष्ट है कि भाषा ऐसी विभूति है जिसका निर्माण रूढ़, मौखिक ध्वनि-व्यवस्था द्वारा होता है और जिसकी उपलब्धि ने इस दो पैर वाले जानवर को मानव का पद दिया तथा इसके अभाव में एक विवेकशील, तर्कसंगत, बुद्धिमान प्राणी और समाज दोनों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

विज्ञान से तात्पर्य किसी विषय के विशिष्ट ज्ञान से है जो अकाट्य एवं अतर्क्य होने के साथ-साथ सार्वभौम और सार्वकालिक हो। विज्ञान विकल्पहीन, वस्तुनिष्ठ एवं अनुभवाश्रित होता है। भाषा जैसी अमूल्य निधि का वैज्ञानिक अध्ययन अनिवार्य है। आप में से अनेक पाठक इस बात से असहमत होंगे और यह सोचेंगे कि 'भाषा-अध्ययन की क्या आवश्यकता है? मैं तो भाषा के विषय में सब जानता हूँ; भलीभाँति भाषा को बोल, लिख एवं पढ़ सकता हूँ भला मुझे भाषा के विषय में और क्या जानना है।' कृपया एक प्रश्न का उत्तर दीजिए आप सभी चलना, रेंगना, खिसकना, घसिटना, दौड़ना जानते हैं। साथ ही आपको यह भी

पता है कि इन क्रियाओं के मध्य क्या अन्तर है? किन्तु हम में से कितने व्यक्ति इन क्रियाओं के संचालन में होने वाली पूर्ण शारीरिक प्रक्रिया का विवरण दे सकते हैं। आपका उत्तर होगा कि यह आम व्यक्ति के जानने की बात नहीं है शरीरविज्ञान का अध्येता इस प्रश्न का उत्तर देगा। ठीक इसी प्रकार भाषा से सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर एवं समस्याओं का समाधान भी एक सामान्य व्यक्ति के वश में नहीं होता है। भाषा की प्रकृति एवं प्रकार्य क्या हैं? भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? भाषा एवं लिपि के मध्य क्या सम्बन्ध है? भाषाओं में कौन-कौन सी भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं? इनको कैसे वर्गीकृत एवं विश्लेषित किया जाए? क्या कुछ ऐसे सार्वभौमिक तत्त्व हैं जो सभी भाषाओं में प्राप्त होते हैं? समस्त भाषाओं को निर्मित करने वाले आधारिक सिद्धान्त क्या हैं? भाषा के विषय में चिन्तन के लिए किन अवधारणों को विकसित करना अनिवार्य है? आदि अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर ज्ञात करने के लिए भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षित है। यह अवश्य है कि भाषा के विषय में यह जानकारी समाज में भाषा के प्रयुक्त रूप, फिर चाहे वह हिन्दी, रूसी, बंगाली या अंग्रेजी हो, के अध्ययन विश्लेषण से ही मिल सकती है। जिस प्रकार एक कार मैकेनिक फिएट, अम्बैसडर, मारूति आदि गाड़ियों को ठीक करता हुआ अन्ततः गाड़ी की संरचना एवं प्रकार्य से परिचित हो जाता है ठीक उसी प्रकार एक भाषाविज्ञान अध्येता इन विविध भाषाओं के आधार पर मानवीय भाषा के सामान्य सिद्धान्तों का स्पष्ट एवं विस्तृत अध्ययन करता है। अतः कह सकते हैं कि नियन्त्रित और तत्त्वतः परीक्ष्य निष्कर्षों से भाषा का अन्वेषण-परीक्षण करना ही भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है और यही भाषाविज्ञान का उद्देश्य भी।

यह एक अनुभवाश्रित अध्ययन विषय है जो भाषा को भौतिक घटना के रूप में स्वीकार करता है और मूर्त, प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियगोचर तथ्यों तथा लक्षणों के आधार पर भाषा का वर्णन, विश्लेषण करता है। सामाजिक उपादान होने के कारण भाषा सामाजिक सन्दर्भों व प्रयोगों से घनिष्ठतः सम्पृक्त होती है, जिनका वर्णन अनुभव के आधार पर भाषाविज्ञान द्वारा किया जाता है। भाषाविज्ञान मूर्त एवं रूपात्मक आधारों को ग्रहण करता है तथा अमूर्त, मायावी, इन्द्रियातीत एवं मानसिक आधारों का साग्रह वर्जन करता है, अतः इसमें तथ्यपरकता मिलती है। किसी भी अध्ययन का दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दो प्रकार का होता है। जब अध्ययनकर्ता की रुचियाँ, अभिरुचियाँ आदि उसके अध्ययन को प्रभावित करें

तो उसे व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन कहते हैं और जब अध्ययनकर्ता अपनी पसन्द, नापसन्द को प्राथमिकता न दे और अध्ययन के केन्द्र में अध्येय वस्तु को रखे, ऐसा अध्ययन वस्तुनिष्ठ कहलाता है। चूंकि भाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन विश्लेषण भाषिक आधारों पर करता है और भाषा में प्राप्त लक्षणों, विशेषताओं के आधार पर भाषा का वर्णन विश्लेषण करता है, किसी अन्य भाषा को आदर्श मानकर उसकी विशेषताओं को आरोपित नहीं करता है, अतः इसका अध्ययन दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होता है, जो स्वगत धारणा एवं प्रतीति का निराकरण कर भाषा सम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डालता है।

भाषाविज्ञान एक वर्णनात्मक विज्ञान है जो सामाजिक सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा को स्वीकार करते हुए उसकी स्वरूपगत विशेषताओं के विश्लेषण एवं वर्णन में प्रवृत्त होता है। वर्णन ही इसका साध्य है। भाषा के आदर्श, साधु अथवा परिनिष्ठित रूप के प्रतिवादन अथवा प्रस्थापन में इसकी कोई रुचि नहीं होती। साथ ही इसका उद्देश्य कोई नवीनतम खोज या अन्वेषण करना नहीं अपितु भाषा के कलेवर में जो कुछ है उसका वर्णन, विश्लेषण मात्र है। वैज्ञानिकता के आग्रह के परिणामस्वरूप भाषाविज्ञान भाषा विश्लेषण के लिए निश्चित पद्धति का प्रयोग करता है। यह भाषा के कलेवर में प्राप्त तत्त्वों व इकाइयों की समान विशेषताओं का आकलन कर उनके समानधर्मी वर्ग एवं उपवर्ग बनाता है और वर्ग के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का तथ्यपरक वर्णन करता है। आवश्यकतानुरूप विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों एवं यंत्रों की सहायता ग्रहण कर उनके गणितात्मक फलों का उपयोग करता है। भाषाविज्ञान वैज्ञानिक निश्चिति एवं अन्तःसंगति की पूर्ति हेतु निश्चित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है, जिससे सभी महत्त्वपूर्ण शब्द निश्चित अर्थ में प्रयुक्त हों।

अध्ययन के अन्य विषयों की तुलना में भाषाविज्ञान एक नवीन विषय कहा जा सकता है, जिसका अध्ययन-अध्यापन विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ही प्रारम्भ हुआ और साथ ही जुड़ गई कुछ भ्रामक धारणाएँ, जो आज इतनी दीर्घ अवधि के बाद भी व्यापक तौर पर फैली हैं। प्रथमतः साहित्य व भाषाविज्ञान की सम्यक् प्रतीति, द्वितीय-भाषाविज्ञान का सम्बन्ध एकाधिक भाषाओं के ज्ञान से है। किन्तु वास्तविकता यह है कि जहाँ साहित्य का सम्बन्ध किसी विशेष भाषा से होता है, यथा- हिन्दी साहित्य, उर्दू साहित्य, अंग्रेजी साहित्य वहीं

भाषाविज्ञान का सम्बन्ध भाषा सामान्य के अध्ययन से है। भाषा सामान्य अर्थात् भाषा का वह रूप जो मानव के मस्तिष्क में नियम समुच्चय के रूप में अवस्थित रह भाषा विशेष को नियंत्रित करता है। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिए ही फ्रेंच, इतावली, स्पेनिश आदि भाषाएँ दो पृथक्-पृथक् शब्दों का प्रयोग करती हैं, जो किसी सीमा तक संस्कृत की वाक् और भाषा की अवधारणा के समतुल्य है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| फ्रेंच | langage | - | langue |
| इतावली | linguaggio | - | lingua |
| स्पेनिश | linguaje | - | lingua |

ध्यातव्य है कि साहित्यिक अध्ययन व्यक्तिनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता की रुचि, अभिरुचि, योग्यता उसके अध्ययन-विश्लेषण को प्रभावित करते हैं जबकि भाषा वैज्ञानिक अध्ययन वस्तुनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता अपनी अध्येय वस्तु में प्राप्त समस्त विशेषताओं का उद्घाटन, विश्लेषण व वर्णन करता है। यह अवश्य है कि जहाँ अन्य अध्ययन विषयों में अध्येय वस्तु एवं अध्ययन माध्यम भिन्न होता है वहीं भाषाविज्ञान में अध्येय वस्तु तथा माध्यम दोनों भाषा ही है और यह परिस्थिति भाषा अध्ययन के क्षेत्र में कुछ कठिनाई उत्पन्न करती है, जिसके निराकरण के लिए भाषाविज्ञान निरूपक भाषा का प्रयोग करता है।

दूसरी भ्रामक धारणा भाषाविद् एवं बहुभाषी को समान मानने की है। प्रायः समझा जाता है कि यदि कोई भाषाविद् है तो उसे कई भाषाओं का ज्ञान होना स्वाभाविक है जबकि एकाधिक भाषा का ज्ञान भाषाविद् की योग्यता है अनिवार्यता नहीं। भाषाविद् के लिए प्रश्न भाषा बोलने का नहीं वरन् भाषा के विषय में बोलने का है, उन सिद्धान्तों के सृजन का है, जो भाषाओं के मूल में निहित नियमों का उद्घाटन कर सकें और एकाधिक भाषाओं के मध्य विद्यमान भिन्नता का विश्लेषण कर सकें। भाषाविज्ञान व्यक्ति में विधिवत् एवं सुव्यवस्थित भाषाध्ययन की रुचि उत्पन्न करता है। उस मनःस्थिति का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह भाषा में घटित विविध लक्षणों का विश्लेषण करने में समर्थ हो। भाषाविद् बहुभाषाभाषी हो सकता है, जैसे- डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भाषाविद् होने के साथ-साथ बंगाली, हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञाता भी थे, किन्तु बहुभाषाभाषी का भाषाविद् होना आवश्यक नहीं, जैसे- भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हाराव अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, भाषाविद् नहीं।

विषयवस्तु की संकीर्णता और विस्तार के आधार पर पिछले कुछ वर्षों से भाषाविज्ञान को सूक्ष्म और बृहत् इन वर्गों में विभाजित किया जा रहा है। संकीर्ण विचारधारा भाषाविज्ञान को स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित करती है जिसका उद्देश्य भाषा के एककालिक वर्णन के लिए सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करना है। मानव भाषार्जन कैसे करता है? समाज में भाषा का क्या स्थान है? भाषा का संस्कृति, दर्शन या तर्कशास्त्र से क्या सम्बन्ध है आदि प्रश्नों का समाधान बृहद्भाषाविज्ञान द्वारा होता है। सर्वप्रथम फ्रेंच विद्वान फर्दिनान्द डि सेस्यूर ने भाषाध्ययन के संकुचित क्षेत्र की आवश्यकता पर बल दिया और यह प्रतिपादित किया कि भाषाविज्ञान का उद्देश्य भाषा के कलेवर में प्राप्त समस्त विशेषताओं का भाषिक आधार पर वर्णन करना है। इस प्रकार सूक्ष्मभाषाविज्ञान भाषायी संरचना-ध्वनि, व्याकरण तथा अर्थ का वर्णन-विश्लेषण भाषिक आधार पर करने का प्रयास करता है। समाज, मानव व संस्कृति से सम्बन्धित होने के कारण भाषिक अर्थ का अध्ययन कुछ समस्याएँ उत्पन्न करता है। बृहद्भाषाविज्ञान में वह सभी परीक्षण, विश्लेषण व शोधकार्य आते हैं जो मानव की ज्ञान वृद्धि करते हैं तथा भाषायी तत्त्वों से भिन्न होते हुए भी मानवीय-सम्प्रेषण-प्रक्रिया से सीधे सम्बन्धित होते हैं, यथा- बोली का अध्ययन सूक्ष्मभाषाविज्ञान की सीमा में आता है किन्तु यदि अध्ययनकर्ता सूचक की संस्कृति से प्रभावित भाषिक-अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करें अथवा सूचक के व्यक्तित्व को उजागर करने वाले कथनों की समीक्षा करें तो अध्ययन सूक्ष्म की सीमा पार कर बृहद्भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आ जाएगा। चूँकि भाषाविज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिए भी भाषा का महत्त्व है अतः आधुनिक समय में अनेक अन्तर्विषयी क्षेत्र प्रकाश में आए हैं- संगणक भाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी आदि की गणना बृहद्भाषाविज्ञान के अन्तर्गत होती है। आज अनुवाद, भाषाशिक्षण और भाषा संरक्षण जैसे अनेक क्षेत्र भाषाविज्ञान के अध्येता के लिए नवीन कार्य क्षेत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

***

# भाषा एवं संस्कृति का अन्तःसम्बन्ध

मानव संसार के जीवधारियों में सर्वाधिक विवेकशील प्राणी हैं क्यों कि इसके पास बुद्धि तथा ज्ञान की निधि है। अन्य प्राणियों की भाँति यह कुछ मूल प्रवृत्तियों सहित जन्म लेता है और अपनी बौद्धिक शक्ति के उपयोग से इनको शोधता है। साथ ही मनुष्य समाज में रहकर भी बहुत कुछ अर्जित करता है। समाज द्वारा अर्जित यह व्यवहार, अभिलक्षण एवं विशेषताएँ संस्कृति की परिधि में आते हैं। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग एवं 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है 'साफ या परिष्कृत करना'। राबर्ट स्टीड के विचारानुसार, 'यह संस्कृति ही है जो एक व्यक्ति को अन्य सब व्यक्तियों से, एक समूह को अन्य सभी समूहों से और एक समाज को दूसरे समाजों से पृथक् करती है।' टायलर का मानना है कि, "संस्कृति वह जटिल समग्र है, जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथाएँ तथा अन्य आदतें एवं क्षमताएँ सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।" इस प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में किसी समाज विशेष की जीवन यापन की पद्धति, विचार, प्रथाएँ, रीतियाँ, मान्यताएँ, विश्वास आदि सभी अन्तर्भुक्त होते हैं। किसी भी अर्जित व्यवहार की भाँति संस्कृति के भी दो पक्ष होते हैं- भौतिक एवं मानसिक। सभ्यता इसके भौतिक पक्ष का द्योतक है और यह समाज द्वारा अपने अस्तित्व हेतु विकसित साधनों, उपकरणों एवं सुविधाओं के समवाय का संकेतक है। डब्ल्यू ग्रीन के मतानुसार "एक संस्कृति केवल तभी सभ्यता बनती है जब उसके पास एक लिखित भाषा, विज्ञान, दर्शन, विशेषीकरण वाला श्रम-विभाग, एक जटिल प्रविधिक और राजनैतिक पद्धति हो।" संस्कृति के मानसिक पक्ष का सम्बन्ध मानव एवं उसके समाज की अपने पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया, भावात्मक सम्बन्ध, विचारणा, आदर्श, मान्यताओं आदि से लिया जाता है। इस प्रकार जहाँ सभ्यता भौतिक विकास का समानार्थी है वहाँ संस्कृति बौद्धिक उन्नति का पर्याय एवं व्यक्ति चेतना

की सम्यक् क्रियाशीलता का सामाजिक तथा सामासिक रूप है। सभ्यता एवं संस्कृति के मध्य अन्तर स्थापित करते हुए श्री बेबर ने कहा, "सभ्यता में उपयोगी भौतिक पदार्थ और उसको निर्माण करने तथा प्रयोग करने की विधियाँ शामिल होती हैं जबकि संस्कृति में किसी समूह के आदर्श, मूल्य और मानसिक तथा भावनात्मक पहलू सम्मिलित होते हैं।"

संस्कृति एक निश्चित समाज के रीति-रिवाज, संस्कार, आदर्श आदि भावी पीढ़ी को इस प्रकार सौंपती है कि व्यक्ति जाने-अनजाने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें ग्रहण करता रहता है। अतः इसे परम्परा का पर्याय भी कहा जा सकता है। यह मानव का जन्मजात गुण नहीं होता वरन् जिस समाज में वह निवास करता है उसकी संस्कृति स्वतः अधिगृहीत कर लेता है। चूंकि भाषा एक नितान्त अर्जित व्यवहार है अतः सम्प्रेषण का मुख्य साधन होने के कारण यह संस्कृति का प्रमुख उपादान एवं वाहक भी है वस्तुतः ये दोनों ही सामाजिक तथ्य हैं। जिस प्रकार मनुष्य मानव-रूप में भाषार्जन की प्राकृत क्षमता रखते हुए भी जन्मतः भाषाभाषी नहीं होता उसी प्रकार वह संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है। संस्कृति के एक उपादान के रूप में अर्जित भाषा का प्रयोग हम सभी के लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है। अपने दैनिक व्यवहार के सभी क्रिया-कलापों को हम प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से भाषा द्वारा पूरा करते हैं किन्तु भाषा की परिभाषा करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि यह प्रकृत्यः जटिल एवं प्रयोजन की दृष्टि से बहुमुखी है। यह एक तरफ हमारे विचारों, संवेगों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है तो दूसरी तरफ समाज के अन्य सदस्यों से संबंध स्थापित करने का सूत्र भी। यह एक ऐसा जीवन्त तथ्य है जो समाज के समस्त परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील भी है। यह वाक् ध्वनियों का ऐसा प्रतीकात्मक संयोजन है जो मानव की व्यक्तिगत एवं सामाजिक अस्मिता की परिचायक, उसके बौद्धिक और मानसिक स्तर का मापदण्ड ही नहीं वरन् एक ऐसी कड़ी है जिसने मानव के वर्तमान को उसके प्राचीन मूल्यों एवं परम्पराओं से जोड़े रखा है। स्पष्ट है कि संस्कृति एवं भाषा दोनों ही सतत प्रवाहमान तथा परम्परागत सामाजिक उपादान हैं और दोनों की ही पहचान प्रायः दिक्काल के आधार पर की जाती है।

भाषा एवं संस्कृति के अन्तःसम्बन्ध की प्रकृति एवं समस्याओं का विवेचन नृवैज्ञानिक भाषाविज्ञान का विषय क्षेत्र है। इसका अध्ययनकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि कोई भाषा किस प्रकार और किस सीमा तक भाषिक समाज की सांस्कृतिक अभिरचनाओं से प्रतिबंधित एवं नियन्त्रित होती है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम अमरीकी भाषाविदों ने भाषा तथा संस्कृति के संबंध एवं उनसे जुड़ी समस्याओं

के निराकरण का प्रयास किया। यूरोप में इस सिद्धान्त के लक्षण अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हर्डर आदि विद्वानों की कृतियों में परिलक्षित होने लगे थे, परन्तु सबसे पहले हम्बोल्ट के लेखों में इस सिद्धान्त ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनके मतानुसार, "The structure of a language is corelated with the knowledge and inner life of its speakers." अमरीकी जगत को इस सिद्धान्त से परिचित कराने का श्रेय फ्रान्ज बोआज़, एडवर्ड सपीर और बैंजमिन ली व्होर्फ को जाता है। आज इसे सपीर-व्होर्फ परिकल्पना के नाम से अभिहित किया जाता है।

इनके मतानुसार प्रत्येक भाषाभाषी अपनी संस्कृति का वाहक होता है जिसका परिज्ञान उसके भाषिक व्यवहार द्वारा सम्भव है। वास्तव में अमरीकी भाषिक अध्ययन की परिस्थितियों ने इन विद्वानों का ध्यान भाषा एवं संस्कृति के संबंध की ओर आकर्षित किया। अमरीकी जनजातियों के भाषा-सर्वेक्षण के दौरान विद्वानों के समक्ष अनेक ऐसी समस्याएँ आईं जिनका समाधान समाज, संस्कृति तथा भाषा के अन्तःसम्बन्धों को ज्ञात किए बिना सम्भव नहीं था। साथ ही विषमजातीय वक्ताओं द्वारा बोली जा रही विविध भाषाओं ने अध्येताओं की रुचि अनुवाद कार्य में जाग्रत की। सांस्कृतिक परिवेश के पूर्ण ज्ञान के अभाव में इन भाषाओं में सही अनुवाद करना भी सम्भव नहीं था। विद्वानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जैसे- किसी भाषा के मुहावरों की प्रकृति की व्याख्या किस प्रकार की जाए तथा किसी समाज की लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ जो दूसरे समाज से भिन्न हैं, उनका वर्णन किस प्रकार हो, इत्यादि। अतः भाषिक इकाइयों एवं कोटियों के वर्णन तथा अनुवाद के लिए सांस्कृतिक परम्पराओं का सम्पूर्ण ज्ञान आवश्यक माना गया। इस दिशा में कार्य प्रारम्भ होने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण अमरीकी जनजातियों की बोलियाँ थीं जिनकी संरचना तत्कालीन ज्ञात भाषाओं से पूर्णतः भिन्न थी। इन भाषाओं के वर्णन के लिए अध्येताओं ने कोशीय सामग्री का संकलन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संस्कृति की उपेक्षा कर इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। इनके प्रभावात्मक वर्णन के लिए सम्बद्ध भाषा समुदाय के जीवन, परम्पराओं और रीतियों का परिचय अनिवार्य है, यथा-अमरीकी जनजाति होपी में किसी कार्य के समय का उस प्रकार वर्णन नहीं मिलता है जिस प्रकार हम अपनी भाषा में करते हैं, वरन् वे घटना की अवधि की व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार एक कदम, एक लहर या चलना क्रिया अस्थायी घटना है और पत्थर, पेड़, आदमी आदि स्थायी हैं जबकि बादल इन दोनों में से किसी वर्ग में नहीं आता है। इसी प्रकार इगहों जाति में खुबानी (फल) मीठी मानी जाती है और कॉफी मीठी नहीं मानी जाती है क्योंकि

कॉफी में मिठास शक्कर से आती है जो अप्रत्यक्ष रूप से उसे मीठा बनाती है। स्पष्ट है कि इन संस्कृतियों के पूर्ण परिचय के आधार पर ही इन भाषाओं की संरचना का सम्यक् वर्णन किया जा सकता है।

बोआज़ ने आदिम अमरीकी जातियों की मौखिक किन्तु पर्याप्त विकसित बोलियों का अध्ययन मातृभाषाभाषी सूचकों की सहायता से उनके सांस्कृतिक परिवेश में रहकर किया। इनके विचारानुसार भाषा पर संस्कृति का प्रभाव, संस्कृति पर भाषा के प्रभाव से कहीं अधिक है। इनके शिष्य सपीर ने भाषा को एक मानवीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपादान माना और संस्कृति को भलीभाँति समझने के लिए भाषिक अनुभवों को सहायक समझा।

अपने अध्ययन के दौरान इन्होंने पाया कि भाषिक इकाइयों के मध्य उपस्थित व्यवस्थित सम्बन्धों की भाँति संस्कृति में भी व्यवस्थित सम्बन्ध अवस्थित हैं और उसकी इस व्यवस्थित प्रकृति का उद्‌घाटन विविध परिस्थितियों के पारस्परिक सम्बन्धों के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। इनके अनुसार सांस्कृतिक अभिरचनाएँ भाषिक की तुलना में वितरणात्मक सम्बन्धों के आधार पर कम विवेच्य होती हैं किन्तु फिर भी संस्कृति का वर्णन व्यवस्थित संरचना के रूप में ही होना चाहिए। सपीर का मत था कि किसी समुदाय के भाषिक रिवाजों (habits) पर उस समुदाय का वास्तविक संसार निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न समुदायों का संसार भी भिन्न होता है वे समान संसार में नहीं रहते हैं। किन्हीं दो भाषाओं में इतना साम्य नहीं होता है कि वे समान सामाजिक वास्तविकताओं का वर्णन कर सकें। इस प्रकार भाषा अनुभवों को वर्णित करने वाला यंत्र नहीं वरन् वक्ताओं को जगत के अनुभवों का ज्ञान कराने वाली है। दूसरे शब्दों में, भाषा अपने प्रयोक्ताओं के सांसारिक परिदृश्य को निर्धारित एवं नियंत्रित करती है।

व्होर्फ़ ने भाषाओं की नैसर्गिक भिन्नताओं की खोज में अलग-अलग वर्गों की भाषाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया और उस प्रसिद्ध धारणा की स्थापना की जिसे आज 'भाषायी-सापेक्षवाद' के सिद्धान्त के नाम से अभिहित किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भाषिक अभिरचनाएँ स्वयं यह निश्चित करती हैं कि कोई व्यक्ति इस संसार का कैसे प्रत्यक्षीकरण करता है तथा इस विषय में किस प्रकार सोचता है। अतः भिन्न भाषिक व्यवस्थाओं के प्रयोक्ता का प्रत्यक्षीकरण एवं चिन्तन भिन्न होने के कारण उनका 'सांसारिक परिदृश्य' भी भिन्न होगा। प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष संसार एक विचित्र बहुदर्शी संस्कारों के प्रवाह की भाँति उपस्थित होता है जिसे वह अपने मस्तिष्क

में स्थित भाषिक व्यवस्थाओं द्वारा व्यवस्थित करता है। यही कारण है कि हर भाषा की संज्ञानात्मक संरचना समान नहीं होती है तथा प्रत्येक भाषा अपने वक्ता की विचार प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

इस परिकल्पना को निम्नलिखित दो बिन्दुओं पर विवेचित किया जा सकता है-

(अ) अपने समस्त कार्यों एवं विचारों के लिए मानव सदैव एक भाषा विशेष की दया पर निर्भर है, जो समाज में उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम है, क्योंकि वह भाषा में कोडीकृत कोटियों एवं विभेदों के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में देख, सुन या अनुभव नहीं कर सकता है।

(ब) किसी एक भाषा विशेष में कोडीकृत कोटियाँ एवं विभेद उस भाषिक व्यवस्था के एकमात्र अपने होते हैं तथा अन्य व्यवस्थाओं से असमानुपाती होते हैं।

इस प्रकार भाषा-अभिरचना एवं भाषेतर (सांस्कृतिक) अभिरचना के पारस्परिक सम्बन्धों को अधिक व्यापक धरातल पर स्थापित कर व्होर्फ ने शब्द (कोशीय इकाई) और जीवन-व्यापार की स्थूल अभिव्यक्तियों को अन्योन्याश्रित माना। उनका विश्वास था कि प्रत्येक जाति की अपनी पूर्वकल्पित धारणाएँ होती हैं जिन्हें मानव अपनी भाषा की परिधि में रहकर व्यक्त करता है अर्थात् प्रत्येक भाषा की अपनी एक सीमित संस्कृति ठीक वैसे ही होती है जैसे किसी जनजाति की होती है। कोई भी व्यक्ति अपने बाह्य प्राकृतिक परिवेश को सर्वथा निरपेक्ष भाव से वर्णित नहीं कर सकता है। इन्होंने भाषा को संस्कृति से और संस्कृति को भाषा से प्रभावित माना। भाषा संस्कृति से प्रभावित है इस बिन्दु पर कहीं कोई सन्देह नहीं किया गया किन्तु इस परिकल्पना का द्वितीय अंग अनेक विद्वानों को मान्य नहीं था। इस वर्णन के आधार पर एक सामान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि किसी विशिष्ट समाज की भाषा उसकी संस्कृति का समग्र एवं अखण्ड अंश होती है तथा प्रत्येक भाषा में प्राप्त कोशीय भिन्नताओं को, वास्तव में, सामाजिक उपादानों, संस्थाओं एवं क्रियाओं के सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण प्रतिबिम्बित करते हैं। मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भाषा की कोशीय व्यवस्था की संरचना का ज्ञान, चाहे वह सर्वेक्षण कार्य के लिए आवश्यक हो, शब्दावली विश्लेषण के लिए अथवा अनुवाद के लिए, संस्कृति के अभाव में अपूर्ण है।

***

# शब्द निर्माण प्रक्रियाएँ

## हिन्दी रूपरचना का संरचनात्मक प्रारूप

यूरोप में, स्विस भाषाविद् फर्दिनान्द डि सेस्यूर द्वारा प्रतिपादित एवं अमरीका में ल्यूनार्ड ब्लूमफील्ड द्वारा विकसित संरचनात्मक प्रारूप मुख्यतः सन्निहित घटक पद्धति (immediate constituent analysis) की सहायता से किसी भाषा की रूप रचनात्मक एवं वाक्य रचनात्मक इकाइयों का विश्लेषण करता है जिसे विश्लेषणात्मक प्रारूप भी कह सकते हैं। संरचनात्मक व्याकरण के मूल में कतिपय पूर्वधारणाएँ कार्य करती हैं जिसमें एक यह है कि वाक्य भाषा का मूलाधार होता है। वाक्य को महत्त्व देने के कारण संरचनाविद् अपना विश्लेषण वाक्य से आरम्भ कर सौपानिक क्रम में नीचे आने वाली संरचनात्मक इकाइयों तक ले जाते हैं और 'चरम घटक' (ultimate constituent) के रूप में रूपिम को स्वीकार करते हैं। विश्लेषण के प्रत्येक सतह पर प्राप्त घटक 'सन्निहित घटक' कहलाते हैं जबकि अन्त में प्राप्त घटक को 'चरम घटक' कहते हैं। सन्निहित घटक की अवधारणा वस्तुतः इस संरचनात्मक भाषिक प्रकृति पर निर्भर करती है कि भाषिक रचनाएँ प्रायः कतिपय केन्द्रीय तत्वों के विस्तार से निर्मित होती हैं। इन केन्द्रीय आधारभूत तत्वों के विस्तार एवं विन्यास का विश्लेषण सन्निहित घटक विश्लेषण के अन्तर्गत किया जाता है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य इसी संरचनात्मक प्रारूप की सहायता से हिन्दी शब्द निर्माण प्रक्रियाओं को उद्घाटित करना है।

रूपरचना के स्तर को दो प्रमुख उपस्तरों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) विभक्तिपरक

(ii) व्युत्पत्तिमूलक

जहाँ प्रथम का संबंध विभक्तियों से है वहाँ द्वितीय के क्षेत्र में व्युत्पादी प्रक्रियाओं की चर्चा की जाती है। विभक्तिपरक रूपरचना प्रायः नियमित होती है। कोई विभक्ति किसी निश्चित पुरुष, वचन या लिंग की सूचना देती है किन्तु कई बार एकाधिक विभक्तियाँ किसी निश्चित वचन, पुरुष, लिंग और कारक की सूचना देती हैं, जैसे- संस्कृत में देवः; देवसः दोनों रूप एक समान कोटि को अभिव्यक्त करते हैं। व्युत्पादी प्रक्रिया का परिणाम एक नवीन शब्द के रूप में सामने आता है, जैसे- घर → घरेलू; घर → बेघर जबकि विभक्ति उसी शब्द के विभिन्न रूपों को प्रकट करती है, यथा- घर : घरों। व्युत्पादी प्रत्यय के संयोजन से प्रायः शब्द का वर्ग परिवर्तित हो जाता है, जैसे :

बच्चा (संज्ञा) बचपन (भाववाचक संज्ञा)

पढ़ (क्रिया) पढ़ाई (भाववाचक संज्ञा)

कुछ विद्वानों का विचार है कि सामासिक प्रक्रिया भी व्युत्पत्तिमूलक रूपरचना से सम्बन्ध रखती हैं परन्तु परम्परावादी विद्वान इसे स्वतन्त्र प्रक्रिया के रूप में स्वीकारते हैं। पाणिनि ने भी अपने अध्ययन में विभक्ति, व्युत्पादक एवं समास की दोनों तरह से चर्चा की - स्वतन्त्र रूप में भी तथा साथ-साथ भी। समसामयिक वैयाकरणों के कार्यों में सम्भवतः इसीलिए विभक्ति, व्युत्पादी और समास के अलग-अलग अध्ययन मिलते हैं। वास्तव में देखा जाए तो समास की प्रक्रिया का संबंध रूपरचना से अधिक अर्थविज्ञान से प्रतीत होता है।

संरचनात्मक प्रारूप में शब्द का विश्लेषण भी सन्निहित घटक पद्धति की सहायता से किया जाता है। अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड तथा हॉकेट ने भी शब्द-निर्माण को सन्निहित घटक द्वारा व्याख्यायित करने का प्रयास किया। ब्लूमफील्ड के मतानुसार, "जटिल रूप रचना वाली भाषाओं में रचना के अन्तर्गत एक सौपानिक क्रम मिलता है" अर्थात् किसी भी जटिल शब्द में प्रत्यय संयोजन, आन्तरिक परिवर्तन आदि प्रक्रम निश्चित क्रम में होते हैं। अतः "the principle of IC leads us to observe that structural order of the constitutents which may differ from their actual order."

एक व्युत्पादी रूपसारिणी के सदस्यों की चर्चा के लिए प्रायः यह माना जाता है कि उनमें से एक आधार रूप (base form) है जिससे अन्य व्युत्पन्न हुए हैं। आधार रूप में प्रत्यय संयोजित होकर इन व्युत्पन्न शब्दों का निर्माण करते हैं। यद्यपि बाह्य रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यय आधार रूप में जोड़ा गया है किन्तु

बाद में उनकी सत्ता एक हो जाती है और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। यहाँ हिन्दी शब्दों के संरचनात्मक विश्लेषण के उद्देश्य से उन्हें अलग मान कर उनका वर्णन किया गया है। हिन्दी की सामग्री का एकत्रीकरण समाचार पत्रों में व्यवहृत भाषा से किया गया है। चार दिन के समाचार पत्रों में प्रयुक्त शब्दों को एकत्रित कर उनका विश्लेषण किया गया। विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि हिन्दी शब्द निर्माण की सर्वाधिक प्रचलित प्रक्रिया आधार रूप + व्युत्पादी प्रत्यय = शब्द है।

(i) आधार रूप + व्युत्पादक प्रत्यय

चुन+आव = चुनाव

चर्चा+इत = चर्चित

बदल+आव = बदलाव

क्षेत्र+ईय = क्षेत्रीय

हिन्दी में अधिकतर शब्दों में एकाधिक व्युत्पादी प्रत्यय संयुक्त मिले, उदाहरणार्थ :

ऐतिहासिकता

ऐतिहासिक+ता

इतिहास+इक

इति+हास

बनावटीपन

बनावटी+पन

बनावट+ई

बन+आवट

शब्द निर्माण की इस प्रक्रिया को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

i. क जब क्रिया आधार रूप में व्युत्पादी अन्त प्रत्यय संयुक्त होकर सार्वनामिक का निर्माण करे :

चालक = चल+अक

उठान = उठ+अन

पाठक = पढ़+अक

(i) ख वह स्थिति जब संज्ञा आधार रूप में व्युत्पादी प्रत्यय संयुक्त होकर क्रिया शब्द का निर्माण करे :

बतिया = बात+इया

हथिया = हाथ+इया

लतिया = लात+इया

जूतिया = जूता+इया

(ii) हिन्दी शब्दों में प्रयुक्त दूसरी शब्द निर्माण प्रक्रिया पूर्व प्रत्यय + आधार रूप अथवा पूर्व प्रत्यय + आधार + शून्य प्रत्यय के रूप में मिलती है, उदाहरणार्थ :

सन्तुष्ट = सम+तुष्ट

परिजन = परि+जन

परलोक = पर+लोक

(iii) विश्लेषण द्वारा हिन्दी की एक अन्य प्रक्रिया प्रकाश में आई जहाँ आधार रूप में पूर्व एवं पर दोनों प्रकार के प्रत्यय संयुक्त दृष्टिगत होते हैं। इसके द्वारा अनेकानेक नवीन हिन्दी शब्दों का निर्माण किया गया है, जैसे :

अपमानित

अपमान+इत

अप+मान

अलौकिकता

अलौकिक+ता

अ+लौकिक

लोक+इक

संरचनात्मक प्रादर्श में प्रत्ययीकरण के अतिरिक्त स्वन विकृति (phonetic

modification); सर्वादेश (suppletion); शून्य विकृति (zero modification) तथा बलाघात परिवर्तन (modulation) आदि प्रक्रियाओं द्वारा भी नवीन शब्दों की निर्माण प्रक्रिया को दर्शाया गया है। इनमें से कुछ का प्रयोग हिन्दी में भी दृष्टिगत होता है :

(i) स्वन विकृति - जब आधार रूप या धातु की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन कर नवीन शब्द का निर्माण किया जाता है, उदाहरणार्थ-

लिख : लेख

मिल : मेल

चल : चाल

भोग : भोज

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कहीं स्वर ध्वनियों में परिवर्तन हुआ है तो कहीं व्यंजन ध्वनियों में।

(ii) सर्वादेश - जहाँ आधार रूप का पूर्ण परिवर्तन हो और सर्वथा नवीन रूप प्रयोग में आ जाए, जैसे :

मैं : हम

है : था

कर : किया

जा : गया

इन शब्दों का आधार रूप क्या होगा इस प्रकार की समस्या प्रायः विश्लेषक के समक्ष आती है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शब्द निर्माण में आगत आधार रूप और प्रत्यय को उसी प्रकार रचना के सन्निहित घटक माना जाए जैसा शब्द के ऊपर की इकाइयों को कहा जाता है अथवा नहीं। सन्निहित घटक पद्धति प्रत्येक स्तर पर दो से अधिक घटकों की सत्ता स्वीकार नहीं करती अर्थात् कोई भी रचना विश्लेषण के किसी भी स्तर पर दो घटकों में ही विभाज्य होती है। हिन्दी शब्द निर्माण के उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अनेक शब्दों में एक साथ तीन घटकों की उपस्थिति भी हो सकती है।

यद्यपि ऐसे उदाहरणों की संख्या कम है तथापि उनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है, जैसे :

अवमानना

अव+मान+ना

पच्चहतर

पाँच+सात+दस

सत्तहत्तर

सात+सात+दस

कतिपय विद्वानों का मानना है कि इस प्रकार के शब्द हिन्दी के अपने नहीं हैं क्योंकि तीन घटकों की सत्ता हिन्दी के लिए स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती बल्कि ये आगत कहे जा सकते हैं। ये शब्द आगत हो या हिन्दी की अपनी संरचना के अंग किन्तु यह निश्चित है कि वर्तमान हिन्दी के समस्त व्युत्पन्न शब्दों की व्याख्या के लिए प्रस्तुत संरचनात्मक प्रारूप में इस नवीन प्रक्रिया को अवश्य जोड़ना होगा जिसमें एक स्तर पर तीन सन्निहित घटकों की सत्ता को स्वीकारा जाए तथा उनका विश्लेषण सम्भव हो।

***

# हिन्दी रंग नामों का व्यवहार क्षेत्र

हम सभी रंगों की दुनिया से परिचित हैं, रंग कितने प्रकार के होते हैं? रंग कैसे दिखते हैं? कोई वस्तु किस रंग की है? आदि, प्रश्नों के उत्तर हमारे लिए अत्यन्त सरल हैं। कह सकते हैं कि रंग हमारे जीवन का अभिन्न और अनिवार्य अंग है। स्त्रियों के लिए रंग का विशेष महत्त्व होता है। किसी से परिचय होते ही वे उसकी नेलपॉलिश, जूते और कपड़ों से लेकर आंखों के रंग तक की चर्चा कर सकती हैं। हमारे जीवन का अपरिहार्य अंग, यह रंग ही कभी-कभी समाज की ज्वलन्त समस्या की जड़ के रूप में दिखता है और दो जातियों के बीच दीवार बन खड़ा हो जाता है।

यह सर्वविदित है कि रंग एक भौतिक घटना है जो मानवाश्रित एवं मानवाधीन न होकर प्रकृति में विद्यमान है। भौतिकशास्त्र में जिसका अध्ययन प्रकाश आवृति तरंग दैर्घ्य के रूप में किया जाता है जबकि शरीरविज्ञानी एवं मनोविज्ञानी इसे प्रकाशीय अनुभूतियों के रूप में देखते हैं किन्तु जनसामान्य के लिए रंग संस्कृति का हिस्सा है जो परस्पर सहभागी संज्ञान पर निर्भर करते हैं। जहाँ भाषा में रंग-नाम/शब्दों का होना अनिवार्य है वहाँ यह भी निश्चित है कि प्रत्येक भाषा की रंग-शब्दावली उसकी अपनी होती है अर्थात् हर भाषा रंगों के स्पैक्ट्रम का नामांकन अपने ढंग से करती है यही कारण है कि कुछ भाषाएँ इस सम्पूर्ण स्पैक्ट्रम को काला और सफेद इन दो वर्गों में विभाजित करती हैं तो कुछ तीन में 'काला-सफेद-लाल', कुछ चार यथा- 'काला-सफेद-लाल-हरा-पीला। स्पष्ट है कि रंगों का व्यवहार क्षेत्र कोई भौतिक या मानसिक घटना न होकर एक सामाजिक अनुवृत है जिसमें संस्कृति के अनुरूप विविधता मिलती है। प्रस्तुत लेख में हिन्दी रंग शब्दावली के व्यवहार क्षेत्र का अध्ययन विश्लेषण साहित्य व बोलचाल की भाषा के आधार पर करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी भारतीय आर्य परिवार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा है, जिसे राष्ट्र भाषा का पद प्राप्त है और सम्प्रति जो नौ राज्यों की राजभाषा भी है। मानक हिन्दी की रंग-शब्दावली में दो प्रकार के शब्द समाहित हैं :

1. आधारिक रंग शब्द
2. व्युत्पन्न रंग शब्द

आधारिक रंग शब्दों का स्वरूप किसी वस्तु या उपादान पर निर्भर नहीं करता है जबकि व्युत्पन्न रंग शब्दों में मूलाधार वस्तु की अनिवार्यता होती है, वे किसी न किसी वस्तु के नाम से ही बनते हैं।

**आधारिक रंग शब्द :** निम्नांकित तालिका में रंग नामों के परिवर्त भी दिए गए हैं :

**सफेद -** श्वेत, शुक्ल, शुभ्र, धवल आदि

**काला -** कृष्ण, श्याम, स्याह आदि

**लाल -** लोहित, शोण आदि

**हरा -** हरित, सब्ज आदि

**पीला -** पीत आदि

**नीला -** नील आदि।

**व्युत्पन्न रंग शब्द :** इन रंग नामों की व्युत्पत्ति किसी वस्तु को संकेतित करने वाले शब्द में प्रत्यय संयोजन द्वारा होती है। निम्नांकित रंग नाम - ई प्रत्यय संयोजन द्वारा व्युत्पादित होते हैं। यह प्रत्यय हिन्दी ही नहीं वरन् फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से आगत शब्दों में भी संयुक्त मिलता है :

बसंत - बसंती

बैंगन - बैंगनी

गुलाब - गुलाबी

आसमान - आसमानी

सिन्दूर - सिन्दूरी

बादाम - बादामी

जामुन - जामुनी
कत्था - कत्थई
फालसा - फालसई
चम्पा - चम्पई
अँगूर - अँगूरी
मोरपंख - मोरपंखी
फिरोज़ा - फिरोज़ी
ख़ाक - ख़ाकी
आबनूस - आबनूसी
धान - धानी
नारंग - नारंगी
बिस्कुट - बिस्कुटी
स्याह - स्याही
अखरोट - अखरोटी

**'–ली' प्रत्यय संयोजन द्वारा निर्मित शब्द**

सोना - सुनहरी/सुनहली
रूपा - रुपहरी/रुपहली

**'- आ' प्रत्यय संयोजन द्वारा निर्मित शब्द**

गेहूं - गेहुँआ/वा
गेरू - गेरुआ/वा
बाघ - भगुवा

**'- इया' प्रत्यय संयोजन द्वारा निर्मित शब्द**

केसर - केसरिया
मूँगा - मूँगिया
दूध - दूधिया

रंग शब्दों की उपरोक्त सूची को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम हिन्दी के समस्त रंग नामों को एकत्रित करने में सफल हुए और कोई शेष नहीं रहा किन्तु हिन्दी साहित्य का सूक्ष्म एवं गहन विश्लेषण हमारे इस भ्रम को तोड़ देता है। हम देखते हैं कि साहित्यिक भाषा में रंगों की संख्या असीम है, लेखक हो या कवि सभी अनेकानेक शब्दों का प्रयोग रंग नामों के सन्दर्भ में करते हैं। हिन्दी साहित्यकारों की कृतियों से उद्धृत किंचित पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

**प्रेमचन्द्र**

कमल की भाँति अरुण, आत्म गौरव की लालिमा, मैलखोरा रंग, वैधव्य के शोक से मुरझाया भुलिया का पीत बदन।

**शिवानी**

गँजेड़ी की आँखों सा रक्तिम, मोती सी उज्ज्वल दंक्त पंक्ति, पके आड़ू से स्वस्थ गाल, रंग ऐसा जैसा मड़ुवे की जली रोटी, बलूई मिट्टी सा रंग, खरे कुन्दन सा रंग, सीप का सा रंग, स्वस्थ रक्त या सिन्दूरी रंग, बताशे से सफेद टखने, मैदा की बोरी सी, शहरी व्याधि की स्याही।

**धर्मवीर भारती**

पके जामुन के रंग की साड़ी, डूबते सूरज का सा रंग, सोनजूही के फूल के रंग का मुंह, अंतरंग मित्रता का रंग, पेड़ों की छायाओं का रंग, बेले की पंखुड़ियों सा रंग, बसन्त के नए-नए मौसमी फूलों के रंग सा।

**हिमाँशु जोशी**

अखरोटी रंग की साड़ी, ताँबे की ललई लिए, हाथी दांत सी गोरी, गुड़हल के फूल की तरह सुर्ख, मेंहदी के रंग की जालीदार कण्डी, कागज की भाँति सफेद।

स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्यकारों ने अनेक चेतन उपादानों जैसे- पके आड़ू, अखरोट से लेकर गंजेड़ी की आंखों का ही नहीं वरन् अनेकानेक भावों, यथा- कलुष की कालिमा, आत्म गौरव की लालिमा का प्रयोग भी रंग नामों के लिए किया। अतः कह सकते हैं कि हिन्दी की रंग शब्दावली एक मुक्त समुच्चय है जिसके सदस्यों

की संख्या असीमित है। हिन्दी साहित्यकारों ने भाषा की इस विशेषता का भरपूर लाभ उठा विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग रंग नाम के लिए किया है। दैनिक जीवन की भाषा का सूक्ष्म अवलोकन इस तथ्य को उदघाटित करता है कि साहित्यकार ही नहीं जनसामान्य भी इस आधार पर नए-नए प्रयोग करता है, जैसे- लखनऊ के ज़रदोज़ी कारीगरों के बीच प्रचलित 'पाकिस्तानी हरा' पदबन्ध एक विशेष रंग के लिए प्रयोग में आता है। इसी प्रकार 'लिरिल हरा' तथा 'रॉबिन नीला' इन दो रंग नामों का प्रयोग लड़कियाँ और व्यापारी वर्ग में हो रहा है। इस प्रकार की नवीन रंग शब्दावली की रचना प्रायः सा/सी अथवा भाँति/तरह शब्दों की सहायता से की जाती है, यथा- चमार सा काला, संगमरमर सी सफेद, कमल की भाँति अरुण, कोरे कागज की तरह सफेद। इस उत्पादकता के होने पर भी हिन्दी की भाषिक व्यवस्था वास्तविक रंगों एवं उन प्रतीकात्मक रंगों के बीच अन्तर करती है जिनका प्रयोग रंग के लिए किया जाता है। 'नीला आकाश' तथा 'बेले की पंखुड़ियों का सा रंग' जैसी अभिव्यक्तियों में बहुत अन्तर है। जहाँ प्रथम रचना में रंग शब्द का व्यवहार आवश्यक नहीं है वहाँ द्वितीय रचना 'रंग' शब्द के प्रयोग के अभाव में अर्थाभिव्यक्ति में असमर्थ है और इसका प्रयोग न किए जाने पर रचना संदिग्धार्थी हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि आधारिक एवं वास्तविक रंग शब्दावली के साथ 'रंग' शब्द का व्यवहार वैकल्पिक होता है, जैसे- नीला कुता/नीले रंग का कुर्ता किन्तु 'डूबते सूरज का सा रंग' अथवा 'बेले की पँखुड़ियों सा रंग' जैसी रचनाओं के साथ इसका प्रयोग अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवेचन इस तथ्य को उजागर करता है कि हिन्दी रंग नामों के भाषिक प्रयोग के दो आयाम होते हैं :

1. अप्रतीकात्मक या भाषिक रंग
2. प्रतीकात्मक रंग

हिन्दी के वास्तविक रंगों 'आधारिक एवं व्युत्पन्न' की चर्चा लेख के पूर्वार्ध में हो चुकी है। यहाँ प्रतीकात्मक वर्ग का विवेचन होगा जिसको पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) प्रतीक रूप में रंग

(ख) रंग रूप में प्रतीक

**प्रतीक रूप में रंग :** हिन्दी में इनका बाहुल्य है, यथा :

**सफेद :** सफेद हाथी, सफेद पोश, सफेद दाग, सफेद चेहरा, श्वेतपत्र, श्वेतपताका, शुक्लपक्ष।

**काला :** काला बाजार, काला सोना, काला पानी, काला बाजारी, काली जुबान, काले दिलवाला, कालाग्नि, कृष्ण पक्ष, कृष्णकाय।

**लाल :** लालबत्ती, लाल मिर्ची, लालफीताशाही।

**हरा :** हरा-भरा, हरितक्रान्ति, हरितमणि।

**पीला :** पीला चेहरा, पीतक, पीतकंद, पीततुंड, पीतमणि।

**नीला :** नीलगाय, नीलतरु, नीलकंठ, नीलकंठरस, नीलक।

उपरोक्त सभी रचनाओं के रंग नाम का प्रयोग प्रतीक रूप में किया गया है, जैसे सन्दर्भानुसार 'लालमिर्ची' से तात्पर्य 'तेज स्वभाव वाली लड़की से भी लिया जाता है।

**रंग रूप में प्रतीक :** दूसरी तरफ हिन्दी में प्रतीकों का रंग रूप में भी प्रयोग प्रचलित है।

हिमांशु जोशी ने अपने कहानी संग्रह 'अन्ततः' में छब्बीस रूपकों का प्रयोग विविध रंगों के लिए किया है जो कहीं नायक-नायिका का वर्णन तो कहीं बालों और कहीं दाँतों या कपड़ों का वर्णन करते हैं, जैसे-बाल सन की तरह सफेद, बाल सफेद हो गए कपास की तरह, बर्फ की तरह सफेद, संगमरमर की तरह सफेद, गोरा दूध से धुला रंग आदि।

इसी प्रकार शिवानी जी के साहित्य के अनेक नवीन लक्षणाओं का प्रयोग किया गया है, यथा - मडुवे की जली रोटी, सीप का सा रंग, पके आड़ू, बताशे, बलूई मिट्टी, मैदा की बोरी।

सम्प्रति हिन्दी समाचार पत्रों में दिखाई पड़ने वाली भगुवा विचारधारा एवं केसरिया सोच जैसी अभिव्यक्तियाँ रंग नामों के व्यवहार-क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत कर उन्हें मात्र नेत्र ग्राह्य नहीं रहने देती हैं वरन् उन्हें मानसिक एवं वैचारिक धरातल पर ले जाती हैं। इसी प्रकार कुछ रंग शब्दों के पूर्व में जुड़े विशेषण उन्हें एक नया

अर्थ देते हैं, जैसे- 'जटका गुलाबी' से तात्पर्य उस चमकदार गाढ़े गुलाबी रंग से लिया जाता है जो जाट जाति में ज्यादा पसन्द किया जाता है और आम शिक्षित वर्ग जिस रंग को नहीं पसन्द करता। रोचक तथ्य यह है कि शिक्षित जाट वर्ग इसी गुलाबी रंग को 'चमारू गुलाबी' नाम से जानता है। यहाँ रंग नाम मात्र रंग विशेष से सम्बद्ध न होकर हिन्दू समाज की वर्ग व्यवस्था को परिलक्षित करता है। यही नहीं हिन्दी में आगत रंग नामों का भी बहुत प्रचलन है, यथा- मैरून, मैजन्टा, ग्रे, क्रीम आदि। इनका प्रयोग समाज में प्रचलित फैशन से प्रभावित दिखाई पड़ता है जहाँ कुछ समय पूर्व 'मैजेन्टा' की बहार थी वहाँ आजकल 'ग्रे' का बोलबाला है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि प्रत्येक भाषा रंग स्पैकट्रम का नामांकन एवं सीमा निर्धारण अपनी व्यवस्था एवं संरचना के अनुरूप करती है और किसी भी भाषा की रंग शब्दावली का व्यवहार-क्षेत्र उसकी संरचना से ही सम्बद्ध होता है।

* * *

# अभिभावकों द्वारा प्रयुक्त भाषा
## एक समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन

भाषा एक जटिल, सामूहिक रूप से प्रयुक्त, पूर्व पीढ़ी से प्राप्त, सशक्त सम्प्रेषण माध्यम है जिसका अर्जन मनुष्य समाज में रह कर करता है। समाज में रहने वाला मनुष्य भाषा के मात्र रूपात्मक एवं संरचनात्मक अभिलक्षण (अर्थात् भाषा के नियम) ही अर्जित नहीं करता वरन् समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हुए समाज के उन सांस्कृतिक एवं पारम्परिक मूल्यों का परिचय प्राप्त करता है जो उसके भाषिक व्यवहार पर स्पष्ट एवं अमिट छाप छोड़ते हैं। इस प्रकार भाषा मात्र एक माध्यम, उपकरण या संकेत व्यवस्था ही नहीं वरन् सांस्कृतिक परम्पराओं का भण्डार और जीवन जीने तथा अभिव्यक्ति का मार्ग है जो अपने प्रयोक्ता (भाषाभाषी) को एक निश्चित अस्मिता एवं व्यक्तित्व प्रदान करती है। कोई भी भाषा जहाँ एक ओर व्यक्ति को विभिन्न सामाजिक भूमिकाओं के निर्वहन योग्य बनाती है, उसकी सहायक होती है वहाँ दूसरी तरफ व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में भी योगदान देती है। भाषा से व्यक्ति का प्रथम परिचय परिवार के मध्य मुख्यतः माता-पिता के माध्यम से होता है। अतः माता-पिता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जो भी भाषायी या अभाषायी संदेश उसे देते हैं उन संदेशों का व्यक्ति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अभिभावकों एवं प्रियजनों द्वारा दिए गए संदेश 'पैरेन्टिंग संदेश' (parenting message) कहलाते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने प्रकृति एवं संरचना के आधार पर 'पैरेन्टिंग संदेशों' को दो वर्गों में विभाजित किया है :

### (क) सकारात्मक संदेश

बच्चे को उत्साहित करने, उसमें आत्मविश्वास पैदा करने, उसे नवीन कार्य करने की प्रेरणा देने वाले संदेश सकारात्मक संदेश कहलाते हैं। जैसा कि नाम से

स्पष्ट है यह संदेश उसे विशेष प्रकार से व्यवहार करने की अनुमति प्रदान करते हैं और उसके व्यक्तित्व एवं भाषा पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं, उदाहरणार्थ :

'मेहनत कर रहे हो तुम जरूर सफल होगे'

'हमारा राजा बेटा'

'लाखों में एक है हमारी रानी बिटिया' आदि।

इन संदेशों को सुनकर बच्चा प्रसन्न होता है तथा उत्साहित होकर वह अपने कार्य को अधिक मनोयोग से पूर्ण करने का प्रयास करता है।

## (ख) नकारात्मक संदेश

कुछ संदेश नकारात्मक होते हैं, जो बच्चे के व्यक्तित्व को कुचल कर रख देते हैं, जिन्हें सुनते ही वह भीतर ही भीतर सहम जाता है, उसका मन विक्षुब्ध हो उठता है, उदाहरणार्थ-

'तुमने तो मेरी नाक कटवा दी'

'तुम्हारी अक्ल घास चरने गई थी'

'निरी बेवकूफ हो'

'छोड़ो! तुमसे कुछ नहीं हो पाएगा' आदि।

इस प्रकार के संदेश मिलने पर बच्चे का मनोबल टूट जाता है और उसका अपने पर से विश्वास उठ जाता है। ये संदेश प्रायः बच्चे को विद्रोही, चिड़चिड़ा एवं गुस्सैल बना देते हैं।

विचारणीय है कि अपशब्द (abuse) एवं नकारात्मक संदेशों में अन्तर होता है। सभी अपशब्द नकारात्मक होते हैं किन्तु सभी नकारात्मक संदेश अपशब्द नहीं कहे जा सकते हैं, जैसे :

'तुम्हारी अक्ल घास चरने गई थी'

यह एक नकारात्मक संदेश है जिसमें हिन्दी के किसी भी अपशब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः कह सकते हैं कि मात्र शब्द नहीं वरन् वक्ता की शैली, उसके भाव एवं भाषाचयन किसी संदेश को नकारात्मक बनाते हैं। किसी व्यक्ति का

व्यक्तित्व एवं भाषा बहुत कुछ इस तथ्य पर निर्भर करती है कि बाल्यावस्था में उसे किस प्रकार के संदेश मिले- सकारात्मक अथवा नकारात्मक। शिशु में सही-गलत के निर्णय सम्बन्धी क्षमता जन्मतः नहीं होती वरन् अभिभावक एवं उसके मध्य घटित अन्तःप्रक्रिया उसे सामाजिक मूल्यों से परिचित कराती है अतः वह उन्हीं मूल्यों का अर्जन करता है जिनका पालन और व्यवहार उसके माता-पिता करते हैं। इस प्रकार अभिभावकों द्वारा दिए गए सन्देश उसके मन में 'अच्छे होने' (okness) अथवा 'न अच्छे होने' (not okness) का भाव बिठा देते हैं। सम्प्रेषित संदेशानुसार कार्य करने पर वह किए गए कार्य के प्रति, माता-पिता की स्वीकृति महसूस करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बर्न द्वारा प्रतिपादित कार्य-सम्पादन विश्लेषण (transactional analysis) का सिद्धान्त भी इस तथ्य को रेखांकित करता है। यह सिद्धान्त जहाँ एक ओर व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के लिए उपाय देता है वहीं दूसरी ओर यह अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण एवं व्यवहार का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। यह सिद्धान्त व्यक्तित्व की तीन 'ईगो' अवस्थाओं पर आधृत है। ये ईगो अवस्थाएं व्यक्ति के विचार, अनुभव, निर्णय तथा व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं जिन्हें क्रमशः पैरेन्ट (parent), एडल्ट (adult) एवं चाइल्ड (child) कहा गया। प्रत्येक मानव में फिर चाहे वह अभिभावक हो या बच्चा, ये तीनों ही अवस्थाएं विद्यमान रहती हैं। प्रथम ईगो अवस्था में सामाजिक एवं नैतिक मूल्य, धार्मिक दृष्टिकोण, अंधविश्वास आदि आते हैं जो एक अभिभावक द्वारा जाने-अनजाने बच्चे को मिलते हैं। इसका प्रकटीकरण समाज के अन्य सदस्यों के प्रति व्यक्त पूर्वाग्रहों, आलोचना तथा पालन-पोषण सम्बन्धी व्यवहार में होता है।

'पैरेन्ट ईगो अवस्था' का सम्बन्ध व्यक्ति की आयु से नहीं होता है। माता-पिता तथा परिवार जनों से सीखे गए तौर-तरीकों का व्यवहृत रूप इसके अन्तर्गत आता है। इसका सम्बन्ध वास्तविकता एवं सूचना संकलन से है। यह ईगो अवस्था बुद्धिमान, व्यवस्थित एवं ग्राह्य होती है और तटस्थ भाव से वास्तविक सम्भाव्यताओं का अनुमान लगाती है। किसी बच्चे में प्राकृतिक रूप से विद्यमान आवेग और संवेदना 'पैरेन्ट ईगो अवस्था' का ही अंग होते हैं। बच्चे के आरम्भिक अनुभवों एवं प्रतिक्रियाओं का लेखा-जोखा (वृत्तान्त) इस अवस्था में रहता है।

पूर्व अनुभवों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में कतिपय मानक निश्चित हो जाते हैं जो एक सीमा तक नवीन अनुभवों के मूल्यांकन को प्रभावित करते हैं अर्थात् वह उन्हीं के आधार पर नए अनुभवों को जानता और समझता है। इसे ही संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने विवरणिका (schema) की संज्ञा दी। 'स्कीमा'

प्रत्येक व्यक्ति के बाह्य जगत सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण को व्यवस्थित करती है और इस तथ्य को रेखांकित करती है कि व्यक्ति अपने सामाजिक सन्दर्भ में अपने और दूसरों के विषय में क्या सोचता है? कैसे विचार रखता है? यह विवरणिका अभिभावक द्वारा प्रदत्त भाषायी एवं अभाषायी संदेशों को अन्तरीकृत करने में बच्चे की सहायता करता है। कोई भी बच्चा अपने जीवन में महत्त्व रखने वाले लोगों द्वारा कहे गए, संदेशों को न केवल अन्तरीकृत करता है अपितु उन संदेशों के अनुरूप जीवन जीता है तत्पश्चात् उन्हें आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। यह धरोहर उस बच्चे की 'स्क्रिप्ट' (script) कहलाती है। यह ध्यान रखने योग्य बिन्दु है कि बचपन में मिले संदेश किसी व्यक्ति की 'स्क्रिप्ट' निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं और यह 'स्क्रिप्ट' अभिभावक की 'पैरेन्ट ईगो अवस्था' से बच्चे की 'पैरेन्ट ईगो अवस्था' में स्वतः जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी भाषी अभिभावकों द्वारा दिए गए संदेशों में प्राप्त समाजभाषिक भिन्नताओं का विश्लेषण एक प्रश्नावली के माध्यम से किया गया तथा यह जानने का प्रयास किया गया कि अभिभावकों द्वारा दिए गए संदेश हिन्दी भाषी समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व, सम्प्रेषण प्रक्रिया और भाषिक व्यवहार को किस प्रकार तथा किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। अध्ययन को विस्तृत एवं गहन बनाने की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के सौ उपन्यासों का भी अनुशीलन किया गया। अनुसन्धान हेतु सामग्री संकलन चार पैमानों (पैरामीटर) पर किया गया - लिंग, आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं शिक्षा। प्रत्येक वर्ग के 25 बच्चों से प्रश्नावली भरवाई गई। परिवर्त्य के रूप में नकारात्मक संदेश एवं उनके कारण जागृत भाव लिए गए। साथ ही संदेशों के अन्तरीकरण को - विरल, बारम्बारता तथा अतिशय बारम्बारता जैसे आवृत्ति क्वान्टम पर जाँचा गया। इस प्रकार हिन्दी भाषिक समुदाय के बच्चों के वाक् व्यवहार एवं व्यक्तित्व पर नकारात्मक संदेशों का कितना और किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है यह जानने का प्रयास किया गया। विश्लेषणार्थ लिये गये चार पैमानों पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का विवरण एवं निष्कर्ष निम्नवत् हैं :

## लिंग

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय समाज एक पितृ प्रधान समाज है जहाँ पुत्री की तुलना में पुत्र को अधिक मान-सम्मान एवं लाड़-दुलार मिलता है। लड़कियों एवं लड़कों को दिए गए संदेशों का तुलनात्मक विश्लेषण भी इस तथ्य की

पुष्टि करता है कि आज भी पुत्र एवं पुत्री के साथ किए गए व्यवहार में स्पष्ट भिन्नता मिलती है। यद्यपि दोनों वर्ग - पुत्र एवं पुत्री, नकारात्मक सन्देश पाते हैं तथापि सन्देश की प्रकृति और भाषा में अन्तर होता है। लड़कियों को प्रायः कुशल गृहणी बनने, पाक कला में निपुण होने एवं घर का काम-काज सीखने के सन्देश दिए जाते हैं, जैसे :

'कभी तो किचन में हाथ बटाया करो'

'दूसरे घर जा कर नाक कटवाओगी'

'ससुराल में दुखी रहोगी'

'कुछ ढंग से काम करना सीख लो' आदि।

एकत्रित सामग्री में लगभग 25% लड़कियों को इसी प्रकार के सन्देश दिए जाते हैं जबकि लड़कों को इस प्रकार के सन्देश नहीं मिलते हैं। उनसे इन कार्यों में निपुण होने की अपेक्षा नहीं की जाती है। उनको दिए गए नकारात्मक संदेशों का सम्बन्ध पढ़ाई, जीविका/पेशे अथवा उनके व्यवहार से होता है, यथा-

'कब तक यूँही पड़े रहोगे'

'बड़ों से बात करने की तमीज नहीं है'

'कुछ पढ़ाई की तरफ भी ध्यान दो'

'साहबजादे नौकरी की भी चिन्ता कीजिए' आदि।

यहाँ यह तथ्य रेखांकित करने योग्य है कि मात्र 10% लड़कियाँ यह महसूस करती हैं कि संदेश देते समय उनके माता-पिता उनमें एवं उनके भाइयों के मध्य भेदभाव करते हैं।

## आयु

आयु की दृष्टि से विचार करने पर पाया गया कि बड़ी उम्र वाले बच्चों की तुलना में किशोरावस्था के बच्चों के लिए अभिभावकों की स्वीकृति अधिक अर्थ रखती है। उनमें सदैव यह भावना रहती है कि माता-पिता उनके कार्यों को स्वीकार करें, उन्हें सम्मान दें, परिवार एवं समाज में उनका भी अपना एक निश्चित स्थान हो, यथा :

'चाहती हूँ पापा सबसे कहें ये बहुत समझदार लड़की है'

'मैं वहीं काम करता हूँ जो उन्हें अच्छा लगे' आदि।

विश्लेषण के दौरान पारिवारिक संगठन से सम्बन्धित एक यह बिन्दु उभर कर सामने आया कि हमारे समाज में बड़ा बच्चा चाहे वह लड़का हो या लड़की अधिक नकारात्मक संदेश का अधिकारी होता है क्योंकि माता-पिता उससे अधिक अपेक्षाएं रखते हैं और उसे सदैव 'रोल मॉडल' के रूप में खड़ा करते हैं। माता-पिता की इच्छा होती है कि वह छोटे भाई-बहनों के लिए एक उदाहरण बना रहे। परिणामतः परिवार के सबसे बड़े बच्चे को अधिक नकारात्मक संदेश प्राप्त होते हैं।

## सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण

भारतीय समाज में दिन पर दिन धनी एवं निर्धन के मध्य की बढ़ती दूरी के कारण वर्तमान स्थिति में अध्ययन का यह पैमाना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। समाज के सभी आर्थिक स्तर वाले बच्चों से प्रश्नावली भरवाई गई। जिनका विश्लेषण इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि सम्पन्न परिवारों की तुलना में निर्धन परिवार के बच्चों को अधिक नकारात्मक संदेश मिलते हैं। बेवकूफ, बिल्ली, चुड़ैल, बौड़म, गधा आदि विशेषणों का प्रयोग उनके माता-पिता के वार्तालाप का अभिन्न अंग है। शिक्षित एवं सम्पन्न परिवार के कुछ बच्चों का कहना था कि उन्हें कभी भी इस तरह के सन्देश नहीं मिले, न प्रत्यक्षतः न परोक्ष रूप में।

## शिक्षा

समाज के सभी स्तरों से प्रतिनिधि लेने के उद्देश्य से सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों से अध्ययन सामग्री एकत्रित की गई। सरकारी विद्यालयों के लड़के एवं लड़कियों द्वारा दिए गए उत्तरों में कोशीय मदों से सम्बन्धित एकरूपता भी प्राप्त हुई, जैसे :

'कुछ काम करो अब ज्यादा पढ़-लिखकर क्या होगा'

'बेवकूफ, पढ़ाई में मन नहीं लगता'।

यह तथ्य सूचनीय है कि 15 से 19 आयु वर्ग में आने वाले लड़कों को भाषिक के साथ-साथ अभाषिक नकारात्मक सन्देश जैसे- शारीरिक ताड़ना आदि भी दिए जाते हैं। जबकि इसी वर्ग की लड़कियाँ ज्यादातर भाषिक नकारात्मक संदेश ही प्राप्त करती हैं, यथा :

"बहरी! हर समय सपनों की दुनिया में रहती है"

"पढ़कर क्या करेगी भाई को तो नौकरी मिली नहीं?"

गैर सरकारी अध्ययन संस्थाओं की लड़कियों को आगे बढ़ने एवं नौकरी करने के भी संदेश दिए जाते हैं जबकि सरकारी संस्थाओं में अध्ययनरत बालिकाओं को दिए गए संदेशों में मुख्यतः घर के कामकाज करने, स्त्रीवत व्यवहार करने जैसे संदेशों का ही बाहुल्य दिखा।

अध्ययन के दौरान हिन्दी भाषी अभिभावकों द्वारा प्रयुक्त संदेश का एक अत्यन्त रोचक उदाहरण प्रकाश में आया, जैसे- कभी-कभी कुछ माता-पिता नकारात्मक संदेश सकारात्मक संदेश के आवरण में ढँक कर देते हैं। इस प्रकार के आवृत्त संदेशों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(i) प्यार एवं दुलार से कहे गए नकारात्मक एवं अपमानजनक शब्द, यथा- बुद्धू, खोत्ती, मर जा कचरो, बावरी, बैलिन, भोंदू, मोटेमल, चुड़ैलो आदि।

सभी सामाजिक, आर्थिक स्तरों वाले लगभग 40% अभिभावक इस प्रकार के संदेशों का प्रयोग करते हैं। वे अपमानजनक शब्दों (अपशब्दों) का प्रयोग प्यार से हँसकर करते हैं और कहीं-कहीं तो अत्यन्त दुलार में ही ये शब्द बोले जाते हैं। कतिपय अभिभावकों में यह अन्धविश्वास घर कर गया है कि 'मर जा' कहने से बच्चों की उम्र बढ़ती है, उसे नजर नहीं लगती है। किन्तु ये माता-पिता इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि बार-बार दिए गए इस प्रकार के सन्देश उनके बच्चे के व्यक्तित्व पर कुप्रभाव डालते हैं।

(ii) नकारात्मक एवं व्यंगात्मक शैली में कहे गए सकारात्मक संदेश, जैसे :

"ये मेरे कमाऊ पूत हैं"

"आप कितने पढ़ाकू हैं"

"ये बहुत समझदार हैं"

"आज तो बहुत काम किया"

इस प्रकार के व्यंग बाण बच्चे के व्यक्तित्व एवं उसकी भाषा पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अध्ययन में भाग लेने वाले सभी बच्चों ने इस 'संदेश पैटर्न' को अस्वीकार किया। माता-पिता द्वारा दिए गए इस प्रकार के संदेश बच्चों को पसन्द नहीं आते हैं। यद्यपि सामाजिक, सांस्कृतिक बन्धनों व दबाव के कारण वे प्रत्युत्तर नहीं दे पाते तथापि वे अच्छा महसूस नहीं करते हैं। यह तथ्य कई बच्चों द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं से स्पष्ट हुआ, जैसे :

"माँ हैं उन्हें क्या कहूँ"

"वो प्यार से कहते हैं पर कभी-कभी मुझे अच्छा नहीं लगता"

कुछ बच्चों ने स्वीकार किया कि वे इस प्रकार के नकारात्मक संदेशों के आदि हो गए हैं और उनसे प्रभावित नहीं होते हैं। वास्तविकता यह है कि उन्होंने 'संचारात्मक सुरक्षा नीति' का प्रयोग करते हुए धीरे-धीरे प्रतिक्रिया न कर, शान्त एवं प्रतिक्रिया विहीन श्रोता का रूप धारण कर लिया है, जैसे :

"पापा बचपन से कहते हैं मुझे फर्क नहीं पड़ता"

"मैं ध्यान नहीं देती सुनती ही नहीं हूँ" आदि।

विचारणीय है कि 'फर्क न पड़ा' या 'ध्यान न देना' जैसे वाक्य स्वयं को समझाने के लिए बोले जाते हैं।

कुछ बच्चों की प्रतिक्रियाएं इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि वो इस प्रकार के स्नेहासिक्त आवरण में लिपटे नकारात्मक संदेशों का विरोध करना चाहते हैं, यथा :

"मन करता है कहने वाले का मुँह नोच लूँ"

"उसे एक चाटा लगाऊँ"

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि जब बच्चे को नकारात्मक संदेश बार-बार मिलते हैं तो वह उन्हें अन्तरीकृत कर लेता है। ये अन्तरीकरण बच्चे के प्रत्यक्षीकरण, सोच, व्यक्तित्व एवं भाषा को निर्धारित करता है। एकत्रित सामग्री इस तथ्य की स्पष्ट संकेतक है कि 80% बच्चे इन नकारात्मक संदेशों का प्रयोग अपने छोटे भाई-बहनों, पड़ोसियों, पालतू जानवरों अथवा गुड्डे-गुड़ियों के साथ करते हैं।

धीरे-धीरे इन नकारात्मक संदेशों की भाषा बच्चों की अनौपचारिक प्रयुक्ति (रजिस्टर) का अंग बन जाती है। अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निरन्तर मिलने वाले नकारात्मक संदेश श्रोता के सामाजिक एवं भाषिक व्यवहार को भिन्न-भिन्न अंशांकों में प्रभावित करते हैं और अप्रत्यक्षतः उनके भाषा-भंडार को दूषित करते हैं। इस प्रकार के संदेशों का लगातार मिलना न केवल बच्चे के व्यक्तित्व और भाषा विकास के लिए हानिकारक होता है वरन् उसके आसपास रहने वाले लोगों के व्यक्तित्व एवं भाषा को भी प्रभावित करता है। बच्चा इन्हें अन्तरीकृत कर भावी पीढ़ी को देता है, जो इस धरोहर को आगे बढ़ा देती है और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

हिन्दी साहित्य से एकत्रित की गई भाषिक सामग्री भी इस तथ्य की संकेतक है कि प्राचीन साहित्य की तुलना में आधुनिक साहित्य में इस प्रकार के नकारात्मक संदेशों का अधिक प्रयोग हो रहा है।

| काल | उपन्यासों की संख्या | नकारात्मक संदेशों की आवृत्ति | |
|---|---|---|---|
| | | अभिभावकों द्वारा | बच्चों द्वारा |
| 1900-1950 | 50 | 84 | 21 |
| 1951-1999 | 50 | 102 | 60 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आरम्भिक काल में रचे गए उपन्यासों में अभिभावक कम नकारात्मक संदेश देते थे और बच्चे भी उनकी पुनरावृत्ति कम करते थे किन्तु 1951 के बाद रचित उपन्यासों में जहाँ अभिभावकों ने नकारात्मक संदेशों का प्रयोग बढ़ा दिया वहीं बच्चों के द्वारा भी प्रयोग में बढ़ोत्तरी देखी जा सकती है। कहते हैं कि "साहित्य समाज का दर्पण होता है", आज व्यवसाय, धन एवं उन्नति की दौड़ में लगा अभिभावक तनावग्रस्त हो बच्चों को अधिक नकारात्मक संदेश देता है जिसकी पुनरावृत्ति बच्चों के व्यवहार में दृष्टिगत होती है। हिन्दी साहित्य भी इसी तथ्य को प्रतिबिम्बित करता है। चूँकि माता-पिता अपने बच्चों से अधिक अनुभवी एवं बुद्धिमान समझे जाते हैं अतः उन्हें यही सुझाव दिया जा सकता है कि इस प्रकार के

नकारात्मक संदेशों पर रोक लगाए। भावी पीढ़ी को देने के पूर्व अपनी 'स्क्रिप्ट' (script) को भलीभाँति टटोल लें। यदि वे चाहते हैं कि उनका बच्चा स्वस्थ्य समाज का निर्माण करे, आत्मविश्वास से पूर्ण हो तो उन्हें अपनी भाषा पर ध्यान देना ही होगा।

***

# भारतीय भाषिक परिदृश्य

भारतवर्ष अपनी भाषिक और सामाजिक विविधता के कारण भाषाविदों एवं नृविज्ञानवेत्ताओं को निरन्तर आकर्षित करता रहा है। विश्व में अन्य कोई इतना विशाल व वैविध्यपूर्ण देश नहीं है जिसकी संस्कृति एवं भाषा परम्परा आद्यान्तः अक्षुण्ण हो और जिसके प्रमाण प्रागैतिहासिक काल से उपलब्ध हों। यद्यपि भारत में भाषा का प्राचीनतम रूप हमें भारतीय आर्य भाषा 'छन्दस' अथवा वैदिक वाङ्मय के रूप में उपलब्ध है किन्तु पुरातीत भाषिक शोध द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व यहाँ नीग्रोटु, किरात, आग्नेय एवं द्रविड़ प्रजातियों के लोग बसे हुए थे और आर्य भाषाओं के प्रादुर्भाव के पूर्व यहाँ इन प्रजातियों की भाषाएँ बोली जा रही थीं। आज प्राचीनतम नीग्रोटु जाति की भाषा के कुछ अवशेष दक्षिण भारत की पनीयर, कादिर आदि जनजातियों तथा अण्डमान द्वीपसमूह में एक छोटे समुदाय की भाषा के रूप में विद्यमान हैं। विद्वानों का मत है कि आग्नेय प्रजाति मूलतः भूमध्य सागरीय तट के निवासी थे और बहुत पहले भारत से इण्डोनेशिया होते हुए आस्ट्रेलिया पहुँच गए थे। सम्प्रति इस प्रजाति के लोग मुख्यतः बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश में पाए जाते हैं। प्राचीन भारत में इन्हें निषाद, कोल, भिल्ल, शबर नामों से उल्लिखित किया गया। इस भाषा परिवार की लगभग 65 बोलियाँ, जैसे- संथाली, मुण्डारी, भूमिज, खरिया, खासी आदि विभिन्न जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं। नित्यप्रति के जीवन की अनेक वस्तुएँ व उनके द्योतक शब्द, यथा- पान, सुपाड़ी, धान, लौकी, बैंगन, हल्दी, केला, बीस पर आधारित गणना प्रणाली, गण्डा, कौड़ी आदि भारतीय संस्कृति को इनकी देन हैं। इन भाषाओं ने विशेषतः पूर्वी भारत की भाषाओं को प्रभावित किया है। कर्पास, कदली, बाण, तम्बूल, पिनाक, विडाल आदि अनेक शब्द इन भाषाओं से संस्कृत में आए थे। आर्यों के पूर्व भारत में निवसित तीसरी प्रजाति किरातों की थी। ये

पूर्वोत्तर दिशाओं से आकर हिमालय की घाटी व तराई के क्षेत्रों में बस गए थे। पश्चिमोत्तर में लद्दाख से लेकर पूर्वोत्तर में असम की पहाड़ियों तक फैले हुए थे। इस परिवार के बोलने वालों की संख्या कई लाख है जो दो सौ से अधिक बोलियाँ बोलते हैं। तिब्बती-चीनी परिवार नाम से अभिहित इन भाषाओं में लद्दाखी, मणिपुरी, आओ, आगामी एवं बोदो आदि की गणना होती है, जिनका अध्ययन-अध्यापन आज विश्वविद्यालयों में किया जा रहा है और जिनमें से अनेक में साहित्य सृजन भी हो रहा है।

भारत में आने वाली चौथी प्रजाति द्रविड़ थी। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा लोथल आदि में उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों से मेसोपोटामिया में प्राप्त पुरावशेषों के साम्य के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि ये लोग भी पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत आए। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि 5000 ईसा पूर्व के आसपास ये पूरे उत्तरी भारत में फैले हुए थे तथा दक्षिण भारत में इनकी स्वतंत्र बसावटें थीं। सम्प्रति दक्षिण भारतीय भाषाएँ मुख्यतः दक्षिण भारत में ही केन्द्रित हैं तथापि गॉड़ (मध्य भारत), खन्द (उड़ीसा), ओराव (बिहार) और ब्राह्वी (बलूचिस्तान) आदि रूप, इनके प्राचीन कालीन बृहद् भाषा क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं। द्रविड़ संस्कृति एवं भाषाओं को भारतीय आर्य संस्कृति एवं भाषाओं ने बहुविध प्रभावित किया। सभ्यता की दृष्टि से उच्चस्तरीय होने के कारण आर्य संस्कृति ने अनेक द्रविड़ प्रभावों को ग्रहण किया था। वर्तमान भारतीय संस्कृति के आधे से अधिक उपादान द्रविड़ स्रोत के हैं। भाषा के क्षेत्र में भी आर्य परिवार की भाषाओं पर द्रविड़ प्रभाव पर्याप्त है। आर्य भाषाओं में टवर्ग ध्वनियों की उपस्थिति, संयुक्त व्यञ्जनों का विकास, स्वर भक्ति (anaptyctic) का बाहुल्य तथा अनेकानेक व्याकरणिक अभिलक्षणों का स्रोत द्रविड़ भाषाओं में ढूंढा गया है। वर्तमान समय में द्रविड़ परिवार की लगभग 153 बोलियाँ भारतवर्ष में बोली जाती हैं। द्रविड़ भाषाभाषी भारत की कुल जनसंख्या के 25 प्रतिशत हैं। द्रविड़ परिवार की चार साहित्यिक भाषाएँ तमिल, कन्नड़, तेलगु, मलयालम संविधान में परिगणित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत, आर्यों के आगमन के पूर्व ही एक बहुभाषाभाषी तथा बहुजातीय देश बन चुका था और इन जातियों के परस्पर सम्पर्क संसर्ग ने इनकी भाषाओं को सम्भवतः प्रभावित किया था। भारत में आर्यों का प्रवेश भी पश्चिमोत्तर दिशा से ही हुआ। पहले वह सप्त सिन्धु (आधुनिक पंजाब) में बसे किन्तु कालान्तर में लगभग समस्त उत्तर भारत में फैल गए। इनके आगमन व प्रसार की कथा युद्धों व संघर्षों की कथा है जिसमें पहले से बसे हुए द्रविड़ लोग पराभूत हुए। निषाद व किरातों से भी उनका संघर्ष हुआ किन्तु सर्वत्र आर्यों की

विजय हुई और कालान्तर में नर्मदा के उत्तर का समस्त भूभाग आर्य सभ्यता, संस्कृति एवं भाषाओं की क्रीड़ास्थली बन गया। आर्य परिवार की भाषाओं का क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक है। सम्प्रति इस देश में आर्य परिवार की कुल 574 मातृभाषाएँ हैं और भारतीय जनसंख्या का 75 प्रतिशत से अधिक भाग आर्य भाषा परिवार की भाषा व बोलियों का प्रयोग करता है। इस प्रकार सबसे बाद में आने वाली आर्य जाति की भाषाएँ भारत में सर्वाधिक व्यापक हैं और सर्वाधिक विकसित भी। इस परिवार की कई भाषाएँ- बंगला, असमिया, ओड़िया, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, हिन्दी व उर्दू संविधान में परिगणित हैं। इसी परिवार की प्राचीन भाषा संस्कृत अखिल भारतीय संस्कृति, साहित्य, दर्शन, धर्म आदि की न केवल माध्यम बनी वरन् भारतीयता का प्रतीक भी बन गई।

भाषाविदों ने आर्यों की प्रारम्भिक बोलियों को प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की संज्ञा दी और इसका काल 1500 ई. पूर्व अनुमानित किया है। यही प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ सामान्यतः 3500 वर्षों की अवधि में विविध आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप में विकसित हुई। इस लम्बी अवधि को भाषिक विशेषताओं के आधार पर तीन कालों में विभाजित किया गया।

(1) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ 1500-500 ई.पू.

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ 500 ई.पू.-1000 ईसवी

(3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ 1000 ईसवी से आज तक

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के प्राचीनतम स्वरूप का परिचय वैदिक संहिताओं में विशेषतः ऋग्वेद की भाषा में प्राप्त होता है। ऋग्वेद की भाषा में एकरूपता का अभाव है। जो एक ओर उनके विभिन्न विकासात्मक स्तरों का द्योतन करती है और दूसरी ओर तत्कालीन भाषागत भिन्नताओं का। अन्य संहिताओं- ऋजु, साम, अथर्वेद की भाषा और अधिक परवर्ती प्रतीत होती है यह भाषागत अन्तर जहाँ एक ओर यह इंगित करता है कि प्रारम्भिक संहिताएँ कालक्रम की दृष्टि से पूर्ववर्ती हैं और बाद की संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों की भाषा परवर्ती है वहाँ ये भी संकेतित करता है कि समस्त आर्यजनों के मध्य प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं जो इन भिन्नताओं की कारण भूत थी। यद्यपि वैदिक वाङ्मय का सम्बन्ध धार्मिक कृत्यों एवं अनुष्ठानों से होने के कारण उनकी एकरूपता को सुरक्षित रखने के प्रयास पर बल था जिसके प्रमाण प्रातिशाख्य व शिक्षाग्रन्थों में

प्राप्त होते हैं तथापि भाषा अपनी स्वाभाविक वैविध्यपूर्ण प्रकृति का अनुगमन करती हुई अनेक रूपों में प्रवाहमान थी। ब्राह्मण ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की कम से कम तीन क्षेत्रीय बोलियाँ अवश्य थी- पश्चिमोत्तर, मध्यवर्ती व पूर्वी। पश्चिमोत्तर बोली पर आर्येत्तर भाषाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पड़ा था। उसे इस काल में उदीच्य भी कहते थे। ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी में पाणिनि ने इसी उदीच्य रूप का मानकीकरण कर उसे संस्कृत के रूप में सदैव के लिए एक सर्वमान्य आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस काल की परवर्ती अवस्था में तत्कालीन आर्य भाषा की बोलियों के तीन रूपों के अतिरिक्त दक्षिणी रूप भी विकसित हो चुका था। यही बोली रूप कालान्तर में अनेकानेक प्राकृतों के रूप में विकसित हुए। प्राचीन प्राकृतों के रूप में सामान्यतः पालि, अशोक के शिलालेखों तथा अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त भाषा की चर्चा की जाती है और परवर्ती प्राकृतों में शौरसेनी, पैशाची, मागधी, अर्धमागधी तथा महाराष्ट्री आदि की। लम्बे समय के अन्तराल में इनसे विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंश भाषाओं ने अस्तित्व ग्रहण किया जिनके आधार पर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ।

भाषाओं के विकास के सन्दर्भ में इस भाषिक सत्य को हृदयंगम करना आवश्यक है कि भाषाओं का विकास सर्वमान्य मानक भाषा या साहित्यिक भाषा से न होकर जनभाषाओं से होता है। जो मानक रूपों के बावजूद अनेक प्रभावों को समेटती हुई प्रगतिशील रहती हैं। मध्ययुगीन आर्य भाषाएँ जैसे- प्राकृत व अपभ्रंश वे भाषा रूप हैं जिनके स्वरूप के लिखित प्रमाण शिलालेखों, अभिलेखों, वैयाकरणों तथा संस्कृत नाटकों द्वारा प्राप्त होते हैं। ये भाषारूप उस समय क्षेत्रीय मानक के रूप में स्वीकृत थे। साथ ही इनके समानान्तर अन्य विविध बोली रूप भी प्रचलित थे जिनमें से ही कोई रूप परवर्ती भाषा के विकास का आधार बना। यही तथ्य हिन्दी की आदि बोली के सन्दर्भ में भी ध्यातव्य है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी खड़ी बोली (कौरवी) के माध्यम से शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बन्धित है, किन्तु भाषावैज्ञानिक तथ्य इस अन्तःसम्बन्ध की पुष्टि नहीं करते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के जिस प्राचीन रूप के नमूने सिद्धों व जोगियों की वाणी तथा उक्ति-व्यक्ति प्रकरण आदि ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत किए जाते हैं, उनकी अनुरूपता शौरसेनी वर्ग की अन्य बोलियों के साथ ही न्यूनाधिक मात्रा में बिठाई जा सकती है। वस्तुतः जिस प्राकृत का विकसित रूप हिन्दी है उसका निकटतम साहित्य रूप हमारे समक्ष नहीं है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं किया जा सकता कि उसका अस्तित्व नहीं होगा। जैसे आज अनेक बोलियों में साहित्य रचना नहीं होती वैसे पहले

भी अधिकांश प्राकृतों व अपभ्रंशों में साहित्य रचना नहीं की गई होगी। ऐसा सम्भवतः इसलिए भी हुआ होगा कि इसी क्षेत्र की दो प्रमुख भाषाओं में धार्मिक एवं राजनैतिक कारणों से साहित्य लेखन प्रारम्भ हो चुका था और इसीलिए हिन्दी की पूर्ववर्ती बोली कौरवी जो दिल्ली, हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती थी, साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम तब तक न बन सकी जब तक दिल्ली मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी न बनी। इसके आरम्भिक साहित्यिक नमूने या तो मुसलमान कवियों व लेखकों की रचनाओं में मिलते हैं या फिर साधु सन्यासियों द्वारा रचित वाणियों में। जैसे-जैसे दिल्ली का राजनैतिक व आर्थिक महत्त्व बढ़ता गया वैसे-वैसे कौरवी भी जनग्राह्य होती गई। राजधानी व उसके आसपास की जनभाषा का प्रयोग मुस्लिम शासन सत्ता व सेना से सम्बन्धित सभी लोगों के लिए न केवल स्वाभाविक था पर आवश्यक भी। फलतः दो-तीन पीढ़ियों में ही दिल्ली की कौरवी अथवा खड़ी बोली एक व्यापक जनभाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी। अमीर खुसरो (1255-1324) ने इसी हिन्दवी को अपनी मातृभाषा कहा और इसमें काव्य रचना की। मुस्लिम साम्राज्य के भारत व्यापी विस्तार के साथ ये भाषा उत्तरी भारत के अन्य नगरों, कस्बों की सैनिक छावनियों तथा छोटे-बड़े प्रशासन केन्द्रों की सम्पर्क भाषा बन गई और धीरे-धीरे समस्त उत्तर भारत की भाषा के रूप में विकसित हुई। मुस्लिम शासकों के साथ ही दिल्ली की यह हिन्दवी दक्षिण भारत पहुँची जहाँ यह दकनी या दक्खनी के नाम से विपुल साहित्य रचना का माध्यम बनी। इस प्रकार जब अंग्रेजों ने भारत में अपने राज्य की स्थापना का उपक्रम किया तो मुर्शीबाद से पेशावर तक के प्रदेश की भाषा के रूप में इसे स्वीकृति प्रदान की और इसकी दोनों शैलियों - हिन्दी और उर्दू को मान्यता दी। अपने इस प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया में इसने अपनी स्थानीयता से मुक्त हो विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभावों को स्वीकार किया। आज कौरवी भाषा अपने समकालीन रूप में अपने मूल भूभाग के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है किन्तु हिन्दी के वर्तमान रूप से आज उसकी भिन्नता है।

भारतीय भाषाओं के विकास की इस परम्परा के सिंहावलोकन से एक भाषिक तथ्य यह उजागर होता है कि वैदिक काल से ही भाषा के किसी न किसी रूप को, विशिष्ट एवं मानक भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। पहले वैदिक भाषा को, बाद में संस्कृत को तथा कालान्तर में, यद्यपि क्षेत्रीय दृष्टि से ही विभिन्न साहित्यिक प्राकृतों एवं कतिपय अपभ्रंशों को। इस प्रकार प्रारम्भ से ही ज्ञात भारत में व्यापक रूप से द्विभाषिकता को भी मान्यता प्राप्त हुई तथा सुदीर्घ काल तक

सभी आर्य एवं आर्येत्तर भाषाओं में से केवल संस्कृत ही अन्तःक्षेत्रीय व्यवहार तथा साहित्य और शास्त्र की भाषा के रूप में स्वीकृत होती रही। आवान्तर युग में भारतीय मानस की यही प्रवृत्ति विभिन्न भारतीय भाषाओं की सहज स्वाभाविक मान्यता का कारण बनी। फलतः जहाँ भाषा की अधुनातम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सभी भारतीय भाषाओं ने उन्मुक्त रूप से संस्कृत को उपजीव्य भाषा के रूप में स्वीकृत किया वहाँ दूसरी ओर इस स्वीकृति के परिणाम स्वरूप सभी भाषाओं में भारतीय भाषिक एकात्मता विकसित हुई, जो आज हमारी संस्कृति और राष्ट्रीयता की अन्यतम उपलब्धि है और जिसे सुरक्षित एवं अक्षुण्ण रखना हमारा परम कर्तव्य है।

## टिप्पणी

गुरुवर श्री राजकिशोर रस्तोगी जी की प्रेरणा से लिखा गया यह लेख उनको सादर समर्पित है।

❋❋❋

# भाषा आधुनिकीकरण

## हिन्दी समाचार पत्र

भाषा अपने अर्वाचीन रूप से अधुनातन रूप तक परिवर्तन की धारा में बहती हुई पहुँची है। उसका यह वर्तमान रूप किसी आकस्मिक घटना का नहीं वरन् शनैः शनैः उसके कलेवर में हुए परिवर्तन का परिणाम है जो इस तथ्य को रेखांकित करता है कि किस प्रकार कोई भाषा अपने प्राचीन रूप से आधुनिक चरण तक विकसित होती है। विकासशीलता भाषा का प्रकृत गुण, उसकी जीवन्तता का परिचायक है। जीवन के विविध कार्य व्यापार की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत भाषा, राजनैतिक, सांस्कृतिक या ऐतिहासिक कारणों से दूसरी भाषाओं के सम्पर्क में आती है तथा ज्ञान के नित नूतन संदर्भों से जुड़ती हुई अपनी जीवन्तता बनाए रखती है और विकसित होती रहती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहार धर्मिता और गतिमयता भाषा की विकासशीलता को सूचित करने वाली दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। विकास के इस प्रवाह में अनेक प्राचीन भाषिक तत्व लुप्त हो जाते हैं तथा भाषिक समुदाय की आवश्यकतानुसार नवीन रूप सम्मिलित होते हैं।

इस प्रकार की नवीनता/आधुनिकता हिन्दी भाषा के विकास क्रम में भी दृष्टिगत होती है। लगभग एक हजार वर्ष से हिन्दी भारत की संपर्क भाषा, राष्ट्र तथा राजभाषा के रूप में निरन्तर पनप रही है, उसका आधुनिकीकरण हो रहा है। किसी भाषा के आधुनिकीकरण का तात्पर्य, चुने गये कोड को सामाजिक गतिविधियों के उन नित नए बढ़ते आयामों में पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए समर्थ बनाना है जिनमें इसका प्रयोग पहले नहीं हुआ है। यह समस्या विस्तारण की प्रक्रिया की ओर ले जाती है। इस प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं- (1) नवीन शब्दों व अभिव्यक्तियों से भाषा कोश का विस्तार (2) नई शैलियों और प्रोक्ति रूपों का विस्तार (फर्गूसन 1968:32) इस प्रकार भाषा आधुनिकीकरण भाषा विकास का ही एक पक्ष है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक आदि विकास के अन्य रूपों के साथ-साथ चलता है। आधुनिकीकरण

के कई कारण हो सकते हैं, यथा- नवीन वस्तुओं का आविष्कार (कम्प्यूटर, मिसाइल, रोबोट आदि) नई संकल्पनाओं का प्रादुर्भाव (ई-मेल, स्नेल-मेल) भाषा में लचीलापन, समाज संरचना में परिवर्तन, नवीन मापदंडों का आगमन (सेर, छिटाक का स्थान किलोग्राम ने लिया है) अथवा नूतन लेखन पद्धति (आजकल समाचार पत्रों में पूर्ण विराम के स्थान पर फुल स्टाप का प्रयोग)। स्पष्ट है कि पुराने यंत्रों को हटाकर नए यंत्रों तथा नवीन विधियों के प्रयोग से वर्तमान स्थिति को अनुकूल, उपयोगी एवं लाभकारी बनाना ही आधुनिकीकरण कहलाता है। कतिपय विद्वानों का मानना है कि यह 'परम्पराओं का बदलाव' है तो विद्वानों का एक अन्य वर्ग इसे 'परम्पराओं को अपनाना' नाम देता है। भाषा के परिप्रेक्ष्य में यह कहना अनुचित न होगा कि समय के साथ प्रत्येक परिवर्तन भाषा के विकास क्रम को नूतनता की संकल्पना से जोड़ता है और आधुनिकीकरण की परिधि में आता है। भाषिक दृष्टि से होने वाला हर परिवर्तन या बदलाव उस भाषा का विकास है परन्तु भाषा विकास की सीमा क्षेत्र में आने वाला हर परिवर्तन आधुनिकीकरण की संज्ञा प्राप्त करे यह अनिवार्य नहीं कहा जा सकता।

## हिन्दी समाचार पत्र का संक्षिप्त इतिहास

"समाचार पत्र का एक उद्देश्य जनता की इच्छाओं-विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है, दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना और तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना है।"

**महात्मा गांधी**

समाचार पत्र के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि भारत में इसका आरम्भ सन् 1780 में कलकत्ता से हुआ। सेंट ऑगस्ट ऑफ हिक्की का यह अखबार 'हिक्की बंगाल गजैट' नाम से प्रसिद्ध था। हिन्दी में यह परम्परा 30 मई 1826 से आरम्भ हुई और समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित होना शुरू हुआ। इस साप्ताहिक में जनता के लिए सरकारी सूचनाएँ, अफसरों के तबादले व नियुक्ति की सूचनाएँ, कुछ देशी व विदेशी समाचारों के साथ-साथ कलकत्ता का बाजार भाव भी प्रकाशित होता था। सन् 1854 में कलकत्ता से ही हिन्दी के प्रथम दैनिक 'सुधावर्षण' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

हिन्दी भाषा के विकास एवं हिन्दी भाषी समुदाय के उत्थान में हिन्दी समाचार पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य हिन्दी के आधुनिकीकरण में समाचार पत्रों के योगदान की सविस्तार व्याख्या है। हिन्दी भाषा का

आधुनिकीकरण हिन्दी समाज की भाँति स्थूल रूप में चार दिशाओं में देखा जा सकता है- लोकवादी; संस्कृतवादी; उर्दूवादी तथा अंग्रेजीवादी। हिन्दी समाचार पत्रों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि समाचार पत्रों में मुख्यतः उर्दूवादी या अंग्रेजीवादी दिशाओं का अधिक प्रयोग हो रहा है। समकालीन हिन्दी समाचार पत्र जैसे- दैनिक जागरण, आज, राष्ट्रीय सहारा, हिन्दुस्तान, स्वतन्त्र भारत आदि में भाषा आधुनिकीकरण से सम्बन्धी निम्नांकित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महती योगदान दिया है।

# आधुनिकीकरण की प्रमुख प्रक्रियाएँ
## ( हिन्दी समाचार पत्रों के परिप्रेक्ष्य में )

### 1. बाह्य आदान

हिन्दी में अनेक असमीकृत शब्द, पदबन्ध एवं सामासिक शब्द अन्य भाषाओं से आए हैं। इस प्रकार के आदान को चार वर्गों में रखा जा सकता है; लोकवादी- वह स्थिति जहाँ आँचलिक भाषाओं के तत्वों का अधिकाधिक समावेश दृष्टिगत हो। संस्कृतवादी- जब संस्कृत की शब्दावली को आधार बनाकर शब्द निर्माण की प्रक्रिया कार्य करती है। फारसीवादी- इसी प्रकार उर्दू, अरबी या फारसी के तत्त्वों को भी हिन्दी ने अपने कलेवर में समेटा है। अंग्रेजीवादी- इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अंग्रेजी की है।

### 1.1 शब्द

**दैनिक जागरण** : एजेंडा, नोटिस, स्टैम्प, काउन्सलिंग, सेन्टर, कम्प्यूटर, बैच, ऑफर, कोचिंग, रैली, ग्रुप, मोबाइल, हिदायत, वसीयत, लिहाज़ा, कब्जेदार, लागू, लिहाजा, कीमत, आमदनी, दरम्यान।

**आज** : कैरियर, स्कैम, कम्पनी, स्टार, न्यूज, डिजाइन, लागू, मुताबिक, हालिया, मुनाफाखोरी, अंजाम, नुमाइश, जमीन, काश्तकार, रिहायशी, मानीटरिंग।

इनके अतिरिक्त अनेक विदेशी शब्द तो हिन्दी शब्द भण्डार का अभिन्न अंग बन गए हैं कि आज आम आदमी उन्हें 'हिन्दी' का ही मानता है। उदाहरणार्थ- जमीन, केस, पेन, पेन्सिल, पेपर, बॉल, स्टेशन, मॉडल, ओटो, आमदनी,

जज, बस, रेल, कार, फिक्र, बाजार, रोज, कीमत, दफ्तर आदि शब्दों का प्रयोग नियमित रूप से हिन्दी अखबारों में देखा जा सकता है।

## 1.2 पदबन्ध स्तर पर

अंग्रेजी तथा अरबी फारसी से हुआ यह आदान मात्र शब्द तक सीमित नहीं है वरन् अन्य इकाइयों का भी ग्रहण हुआ है। अनेक पदबन्धीय आगत इकाइयाँ हिन्दी समाचार पत्रों में व्यवहार में आती हैं।

**दैनिक जागरण** : डिग्री कॉलेज, हाई कमान, हेड लाइन, गर्ल्स कॉलेज, क्रिमिनल केस, रिजर्व बैंक, फ्रन्ट पेज न्यूज, ब्लडग्रुप।

**आज** : पोस्ट ऑफिस, प्लेग्रुप, पब्लिक कॉलेज, मेडिकल कॉलेज, अर्बन बैंक, ई-मेल, बेवसाइट।

## 1.3 सामासिक शब्द स्तर पर

**दैनिक जागरण** : क्रिकेट बोर्ड लैपटॉप, स्ट्रीटलाइट, रेलवे बोर्ड।

**आज-** कम्प्यूटरमॉनीटर, बिल्डरमाफिया, इन्टरसिटी, इन्टरनेट।

## 1.4 पदबन्धों एवं सामासिक शब्दों का सरलीकरण

**दैनिक जागरण**: सीबीआई, पीडब्लूडी, पोटो, एनडीए, आइएसआई, वैट।

**आज** : बीजेपी, एमपी, एमएलए, भाकपा, राजद इत्यादि।

## 2. आगत अनुवाद

एक विशेष प्रकार का आदान जिसमें आगत शब्द या पदबन्ध के रूपिमिक घटकों को नवीन भाषा के समतुल्य अनूदित किया जाता है। कभी-कभी एक-एक अंग का शब्दशः अनुवाद करके दात्री भाषा की अभिव्यक्ति के समानान्तर नए शब्द की रचना की जाती है तो कहीं संयुक्त शब्द का एक भाग पुनः प्रस्तुत कर उसके दूसरे भाग का अनुवाद कर नए शब्द का निर्माण किया जाता है। अंग्रेजी अभिव्यक्तियों के शब्दशः अनुवाद की सहायता से हिन्दी में अनेक नवीन रचना तथा नई अवधारणाओं का विकास हुआ है। फलतः अनेक हिन्दी पदबन्ध, समास आदि रचनाएँ अंग्रेजी से शब्दशः अनूदित

होकर प्रयुक्त हो रही हैं :

## 2.1 कोशीय स्तर पर आगत अनुवाद

| | | |
|---|---|---|
| **दैनिक जागरण** | आन्दोलन | agitation |
| | प्रशासन | administration |
| | योजना | plan |
| **आज** | आर्थिक अन्वेषण | economic investment |
| | सौर ऊर्जा | solar energy |
| | वामपंथी | leftist |
| | कालाधन | black money |

## 2.2 रूपिमिक स्तर पर

### 2.2.1 रूपिम

विश्लेषण में अनेक ऐसे शब्द मिले जहाँ अंग्रेजी के परप्रत्यय -al, -able, -izalion, -ism इत्यादि को संस्कृत व्याकरण व्यवस्था के अनुरूप अनूदित कर संयुक्त किया गया है। इस प्रकार हिन्दी के अनेक विशेषण एवं संज्ञा शब्द व्युत्पादी प्रक्रिया द्वारा इन परप्रत्ययों की सहायता से निर्मित होते हैं, यथा :

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| -al | - इक | राजनीतिक, | ऐतिहासिक, | भौगोलिक |
| -able | - ईय | ग्रहणीय, | सम्मानीय, | करणीय |
| -ism | - वाद | समाजवाद, | कम्युनिस्टवाद, | मनोवाद |
| -izalion | - करण | भूमंडलीकरण, | ध्रुवीकरण, | उदारीकरण |
| -tion | - करण | सरलीकरण, | निस्तरीकरण, | निजीकरण |

### 2.2.2 पदबन्धीय स्तर पर आगत अनुवाद

समकालीन हिन्दी में प्रचलित पदबन्धीय रचनाएँ (विशेषण + संज्ञा) इसी वर्ग में आती है, उदाहरणार्थ :

| | | |
|---|---|---|
| **दैनिक जागरण** | महत्त्वपूर्ण बैठक | important meeting |
| | सीमित समय | limited time |
| | योजनाबद्ध अर्थनीति | planned economy |
| **आज** | शीतल पेय | cold drink |
| | विकासशील देश | developing country |
| | हिन्दु अविभाजित परिवार | Hindu undivided family |

### 2.2.3 सामासिक रचनाएँ

(संज्ञा+संज्ञा)

| | | |
|---|---|---|
| **दैनिक जागरण** | लोकसभा | parliament house |
| | सूचना प्रौद्योगिकी | information technology |
| **आज** | सीमा पार आतंकवाद | cross border terrorism |
| | व्यापार मण्डल | business circle |

## 3. आगत अर्थ परिवृत्ति

हिन्दी के आधुनिकीकरण में व्यवहृत एक अन्य प्रक्रिया **आगत अर्थ परिवृत्ति** (loan shift) कहलाती है। जब अर्थ का आदान हो किन्तु शब्द पूर्व की भाँति रहे तो इसे आगत अर्थ परिवृत्ति की संज्ञा देते हैं। ग्राहक भाषा के कतिपय शब्द और अभिव्यक्तियाँ दात्री भाषा से प्रभावित होने के फलस्वरूप अपने प्राचीन रूप में ही आ जाते हैं किन्तु अर्थ के क्षेत्र में परिवर्तन हो जाता है अर्थात् उन शब्दों के अर्थ क्षेत्र का विस्तार हो जाता है। लेकिन कभी-कभी इसके विपरीत अर्थ संकुचन की स्थिति भी मिलती है। इस प्रकार हिन्दी में शब्दों के अर्थ परास में विस्तरण एवं सीमितता लाकर अनेक नवीन अभिव्यक्तियों का निर्माण किया गया

है जहाँ कभी-कभी प्रयोग संदर्भ सीमित हो जाता है जबकि कई बार प्रयोग सन्दर्भ का विस्तार हो जाता है।

## 3.1 सीमित अर्थ

संसद

मंत्री

सचिव

मंत्री तथा सचिव अपने मूल अर्थ में पर्यायवाची शब्द थे किन्तु हिन्दी के आधुनिक रूप में मंत्रालय और सचिवालय शब्दों में भेद किया गया। यही नहीं एक ही संगठन में 'मंत्री' और 'सचिव' दो भिन्न पदनाम प्रयुक्त होते हैं।

## 3.2 विस्तृत प्रयोग संदर्भ

'पत्र' शब्द के अर्थ में विस्तार के अनेक प्रयोग मिलते हैं- परिचय पत्र, श्वेत पत्र, समाचार पत्र, आवेदन पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ।

एक अन्य उदाहरण लें - काला

कालाधान, कालाबाजार, काली ज़ुबान, काली नज़र

## 3.3 संकर शब्द

भाषा व्यवहार करते समय जब वक्ता किसी एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्व मिश्रित कर देता है तो इस प्रक्रिया को कोड मिश्रण कहते हैं। दो या अधिक भाषाओं की कोशीय इकाइयों के मिश्रण से संस्कृतीकरण, फारसीकरण, अंग्रेजीकरण की प्रक्रिया हिन्दी में दृष्टिगत होती है। एकाधिक भाषाओं के तत्व से निर्मित शब्द संकर कहलाता है और इस निर्माण प्रक्रिया को संकरीकरण कहते हैं।

## (क) रूपिम स्तर पर

मीटिंगों (अंग्रेजी मूल शब्द + हिन्दी विभक्ति)

रेलों

पिक्चरें

कभी-कभी हिन्दी मूल शब्द में अंग्रेजी बहुवचन प्रत्यय का प्रयोग भी किया जाता है किन्तु इस प्रकार के प्रयोग मौखिक भाषा तक सीमित हैं।

## (ख) पदबन्ध स्तर पर

| अंग्रेजी + हिन्दी | हिन्दी + अंग्रेजी |
|---|---|
| बजट सत्र | भारतीय क्लासिकल म्यूजिक |
| ब्लैक साड़ी | लाठी चार्ज |
| मेगा योजना | भारतीय हॉकी बोर्ड |
| पार्लियामेन्ट भवन | व्यक्तिगत कम्प्यूटर |
| मोबाइल सेवा | पुष्पक एक्सप्रेस |
| स्टडी ऋण | कपड़ा मिल |

## (ग) समास स्तर पर

| अंग्रेजी + हिन्दी | हिन्दी + अंग्रेजी |
|---|---|
| शेयर बाजार | जीवन बीमा |
| रेलगाड़ी | लखनऊ जंक्शन |
| पार्टी कार्यालय | प्रथम मिशन |
| पार्सल घर | |
| इन्फोढेला | |
| बैंड बाजा | |

## (घ) संकरीकृत द्विरुक्त रचनाएँ

| | |
|---|---|
| ठंडा ठंडा | कूल कूल |
| double सफेदी | double मजा |

## (च) संज्ञा + क्रिया से निर्मित

| | |
|---|---|
| लाइन मारना | डिस्टर्ब करना |

| | |
|---|---|
| अपील करना | मीटिंग करना |
| लव करना | चार्ज करना |

### (छ) अन्य भाषाओं से निर्मित संकर

| | |
|---|---|
| बे + जोड़ | बेजोड़ |
| उड़न + दस्ता | उड़नदस्ता |
| बाजार + भाव | बाजारभाव |
| माल + गाड़ी | मालगाड़ी |
| पंच + नामा | पंचनामा |

## 4. वाक्य रचना

किसी भी भाषा की वाक्य रचना अन्य स्तरों की तुलना में शीघ्र परिवर्तन स्वीकार नहीं करती है। अंग्रेजी से दीर्घकालीन सम्पर्क के फलस्वरूप हिन्दी की वाक्य रचना में भी कतिपय परिवर्तन आए और हिन्दी में नई वाक्य व्यवस्था ने जन्म लिया। बड़ी-बड़ी वाक्य रचनाओं का प्रयोग, क्रियाहीन वाक्यों का निर्माण, वाक्य में निक्षिप्त रचना का प्रयोग आदि विशेषताएँ हिन्दी के आधुनिकीकरण में सार्थक भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

### 4.1 अप्रत्यक्ष कथन

अंग्रेजी वाक्य रचना में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कथनों का व्यवहार मिलता है जबकि हिन्दी में प्रत्यक्ष कथन प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। सम्प्रति, अंग्रेजी के प्रभावस्वरूप हिन्दी समाचार पत्रों में एक वचन कर्तायुक्त वाक्यों में भी अप्रत्यक्ष कथन प्रयोग के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ :

"उन्होंने कहा कि सभी कमरे भर चुके हैं और जगह नहीं है, ऐसे में व्यवस्था नहीं हो पाएगी।" (दैनिक जागरण)

"याची ने कहा कि उसे यह भी सूचना मिली है कि बोर्ड, पोस्टर एवं बैनरों के माध्यम से प्रचार करने वाले 30 लोगों के विरुद्ध नगर निगम कार्रवाई कर रही है।" (राष्ट्रीय सहारा)

## 4.2 संबंध परक उपवाक्य

ऐसे उपवाक्य जो मुख्य उपवाक्य अथवा उसके किसी घटक से संबंधवाचक सर्वनाम द्वारा संयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में ज संबंधपरक सर्वनाम द्वारा निर्दिष्ट संबंधपरक उपवाक्य या तो संज्ञापदबन्ध के अथवा वाक्य के विशेषक के रूप में कार्य करते हैं, यथा The girl whom you met yesterday is my sister इस वाक्य में संबंधपरक उपवाक्य whom...sister संज्ञापदबंध The girl का विशेषक है। This is the book about which I told you yesterday वाक्य में संबंधपरक उपवाक्य मुख्य उपवाक्य This is the book का विशेषक है। अंग्रेजी वाक्य रचना की यह विशेषता अब हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा की श्री वृद्धि कर रही है, उदाहरणार्थ :

"11 सितम्बर की घटना से, अमरीका, जो दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश माना जाता है और जो सभी देशों की रक्षा करता है, हिल उठा।"

"कैबिनेट ने आज परिवहन निगम के उन कर्मचारियों की पेंशन सुविधा, जिनकी नियुक्ति 1 जून 1972 से 8 जुलाई 1982 के बीच हुई थी, अनुमन्यकर दी।" (दैनिक जागरण)

## 4.3 कर्मवाच्य रचनाएँ

अंग्रेजी वाक्य रचना में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में कर्तृवाच्य का ही अधिक प्रचलन है किन्तु आधुनिक समाचार पत्रीय हिन्दी में कर्मवाच्य का भी बहुत प्रयोग देखने को मिलता है, यथा :

"वे लड़कियाँ समाज के उच्च वर्ग द्वारा प्रताड़ित की गईं"

"बाढ़ग्रस्त लोगों को सात दिन तक रसद पहुँचाई गई"

"इस निर्णय के द्वारा स्ट्राइक अवैधानिक घोषित की गई"

"विगत दो दिनों पूर्व आये मौसम के आकस्मिक परिवर्तन से किसानों द्वारा बोयी गयी ज्वार, बाजरा, उरद, मूँग एवं लोबिया तथा धान व अरहर जो पानी के अभाव में सूख रहीं थी उनमें जान आ गयी है।"

(दैनिक जागरण)

यहाँ प्रस्तुत अन्तिम उदाहरण अंग्रेजी प्रभावित वाक्य रचना का रोचक उदाहरण कहा जा सकता है।

## 4.4 निक्षिप्त उपवाक्य

जब वाक्य में कोई स्वतन्त्र उपवाक्य बीच में संयुक्त कर दिया जाए तो उसे निक्षिप्त उपवाक्य की संज्ञा देते हैं। यदि इसे वाक्य से पृथक कर दिया जाए तो भी मूल अर्थ में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं आती है।

"अधिकारियों के अनुसार उच्चतम न्यायालय द्वारा समान फीस व्यवस्था लागू किये जाने के निर्देश के बाद पिछले वर्ष राज्य सरकार ने एक समिति गठित कर, उसका निर्णय न आने तक, निजी संस्थानों के लिए तकनीकी पाठ्यक्रमों की 35000 रुपये फीस निर्धारित की थी" (दैनिक जागरण)

हिन्दी के कतिपय वाक्यों में विधेय श्रृंखला भी अंग्रेजी से प्रभावित दृष्टिगत होती है। इस प्रकार के प्रयोग भाषा में सजीवता लाते हैं, जैसे -

"नीचे से नीचे दर्जे का मनुष्य- किसान, कुली, कारीगर आदि और ऊँचे से ऊँचे दर्जे वाले- कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ सबों ने मिलकर कौमी तरक्की को इस दर्जे तक पहुँचाया है।" (दैनिक जागरण)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाचारपत्रीय हिन्दी भाषा ने उसके आधुनिकीकरण में महती योगदान दिया है। समाचारपत्रीय हिन्दी भाषा का स्वरूप विदेशी एवं क्षेत्रीय भाषाओं से प्रभावित हुआ किन्तु इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अंग्रेजी की रही है। अपनी भाषा द्वारा नए विचार, नवीन खोज को सम्प्रेषित करने में असमर्थता महसूस करने पर हिन्दी वक्ता अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है जो धीरे-धीरे हिन्दी की संचरना का अभिन्न अंग बन गए हैं। यही नहीं इन शब्दों का स्वनप्रक्रियात्मक रूप भी हिन्दी के समान हो गया है।

नवीन शब्दों की रचना में अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत का भी प्रभाव है फलस्वरूप अंग्रेजी मूल रूप का अनुवाद कर उसमें संस्कृत प्रत्ययों के संयोजन द्वारा अनेकानेक नवीन अभिव्यक्तियाँ प्रचलित हो गई हैं। अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी मुहावरों के अनूदित रूपों ने भी हिन्दी भाषा को समृद्ध किया है। इसी प्रकार संकर शब्दों

पदबन्धों व रचनाओं का भी हिन्दी में अत्यधिक प्रयोग मिलता है। हिन्दी वाक्य रचना का सूक्ष्म अध्ययन अनेक ऐसी विशेषताओं को उद्घाटित करता है जो वास्तव में अंग्रेजी आदान का फल हैं।

> "शहर के प्रमुख रिहायशी व व्यावसायिक तथा शांत श्रेणी के इलाकों में रात 10 बजे से 2 बजे के दरम्यान प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की मानीटरिंग में ध्वनि प्रदूषण के आंकड़े, सेहत के लिए तय किये गए सुरक्षित मानकों को लांघ, खतरे की सीमा में मापे गए हैं।" (दैनिक जागरण)

***

# अमरीकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान में अर्थ की भूमिका

समाजशास्त्र, भाषाविज्ञान, प्रतीकविज्ञान आदि विषयों के लिए 'सम्प्रेषण' की संकल्पना केन्द्रीय एवं महत्त्वपूर्ण है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस सामाजिक अवधारणा का सम्बन्ध किसी प्राणी समूह में पारस्परिक सम्बन्धों के उत्प्रेरक कारकों एवं उनकी अभिव्यक्ति से लिया जाता है अर्थात् जब कोई वस्तु या प्राणी गतिशील होकर किसी अन्य वस्तु या प्राणी को गतिशील करे तो मध्य में घटित प्रक्रिया सम्प्रेषण कहलाती है। कह सकते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति तक सूचना का संचरण ही सम्प्रेषण है। भाषा में इस उद्देश्य की प्राप्ति वाक्-ध्वनियों की निश्चित व्यवस्थाओं द्वारा होती है और ये ध्वनि प्रतीक एक विशिष्ट अर्थ का वहन करते हैं। इन प्रतीकों की सम्पूर्ण व्यवस्था कोड या भाषा कहलाती है। किसी भी वाक् घटना में एक ओर संदेश भेजने वाला वक्ता होता है और दूसरी तरफ संदेश ग्रहण करने वाला श्रोता। वक्ता-श्रोता के मध्य संदेश का आदान-प्रदान एक निश्चित कोड के माध्यम से ही होता है। विशिष्ट सामाजिक एवं वैयक्तिक संदर्भों से सम्बद्ध भेजी गई किसी भी सूचना के लिए यह अनिवार्य है कि वक्ता-श्रोता समान कोड प्रयोग करें जिससे श्रोता वक्ता द्वारा भेजे गए संदेश का आशय ग्रहण कर सके। स्पष्ट है कि अभीष्ट अर्थ सम्पूर्ण सम्प्रेषण प्रक्रिया में ही विद्यमान रहता है। इस कथन को अधिक सम्पुष्ट इस तर्क से भी किया जा सकता है कि प्रत्येक भाषा में ऐसे अनेक व्याकरणिक तत्व होते हैं जिनका कोई निश्चित अर्थ नहीं होता और जो अपने सन्दर्भ से अर्थ ग्रहण करते हैं।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान में कोड की रूपात्मक व्यवस्था एवं उसके रूपात्मक अर्थ पर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाश डाला गया। किन्तु पारम्परिक भाषाविज्ञान में वक्ता की सम्प्रेषणात्मक क्षमता का विवरण प्रस्तुत करने के प्रयास हुए तथा भाषा

स्वरूप के वर्णन हेतु अर्थ को अधिक महत्त्व देने वाले प्रारूप प्रस्तुत किए गए। फिर भी भाषा अध्ययन का केन्द्र बिन्दु व्याकरण ही माना गया। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य अमरीकी संरचनात्मक भाषाविद् सपीर एवं ब्लूमफील्ड के कार्यों एवं सिद्धान्तों में अर्थ की भूमिका को निरूपित करना है। एक आम धारणा प्रचलित है कि अमरीकी भाषाविदों ने भाषाध्ययन के क्षेत्र में अर्थ की सत्ता को नकारा एवं उसे बहिर्भाषिक और अधिभाषिक कहा। सम्भवतः इस प्रकार की भ्रामक धारणाओं का कारण अमरीकी विद्वानों के निम्नांकित कथन थे :

(i) "The signals can be analyzed, but not the things signaled about. This re-inforces the principle that linguistic study must always start from the phonetic form not from the meaning...." (1933 : 162)

(ii) "The statement of meanings is therefore the weak point in language-study, ....." (1933 : 140)

यही नहीं हॉकेट ने अर्थ को अभाषिक बताते हुए कहा कि किसी भी कथन की न तो आर्थी संरचना होती है और न ही स्वनिक क्योंकि अर्थ विज्ञान एवं स्वनविज्ञान का सम्बन्ध संरचना से नहीं अभ्यास से होता है। भाषाविद् हैरिस के विचारानुसार अर्थ-चिंतन किसी भी सुनिश्चित भाषिक कार्य क्षेत्र में हो रहे शोध में केवल परोक्ष रूप से सहायता करता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि अमरीका में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के बीजारोपण एवं वर्धन का श्रेय एडवर्ड सपीर और ल्यूनार्ड ब्लूमफील्ड को जाता है। इन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सैद्धान्तिक दृष्टिकोण एवं सुनिश्चित पद्धति ने दीर्घकाल तक अमरीकी भाषाविदों का मार्गदर्शन किया। यद्यपि ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'लैंग्वेज' (1933) का प्रभुत्व लम्बे समय तक अमरीकी भाषाविज्ञान जगत में छाया रहा तथापि वहाँ विकास की दो समानान्तर धाराएँ स्पष्टतः देखी जा सकती हैं। इनमें एक के संस्थापक सपीर और उनके शिष्य थे तो दूसरी धारा का पल्लवन एवं वर्धन ब्लूमफील्ड और उनके अनुयायियों द्वारा किया गया। चूंकि भाषा का स्वरूप और सत्ता उसकी सार्थकता पर निर्भर करती है अतः दोनों अमरीकी धाराओं ने अर्थ पक्ष पर ध्यान दिया। जहाँ सपीर ने तर्कबुद्धिवादी उपागम का पालन करते हुए भाषा को उसकी समग्रता में देखने का प्रयास किया; उसे संस्कृति का अंग माना वहाँ इन्द्रियानुभववाद

के पक्षधर ब्लूमफील्ड ने भाषा को एक मानवीय विभूति, भौतिक घटना के रूप में स्वीकार किया। किन्तु दोनों विद्वानों ने भाषा की संप्रेषणपरक भूमिका के महत्त्व पर बल दिया जिससे स्पष्ट है कि उन्होंने अर्थ-चिन्तन को नकारा नहीं।

एडवर्ड सपीर मूलतः नृविज्ञानशास्त्री थे बाद में जिनकी रुचि भाषाविज्ञान की ओर बढ़ी। उन्होंने भाषा को उसके सांस्कृतिक परिवेश में रखा और सम्प्रेषण साधन के रूप में भाषा की सामाजिक एवं तकनीकी दृष्टि से व्याख्या पर बल दिया। भाषा बहुमुखी प्रकृति वाली होती है। इसकी सीमा में साहित्य, सौन्दर्यशास्त्र, भाषा और विचार, भाषा और वास्तविकता, भाषा का मनौवैज्ञानिक पक्ष आदि आयामों की गणना की जाती है। इस प्रकार सपीर भाषाध्ययन के मैक्रोकोज़्मिक (ब्रह्मांडीय) उपागम के पक्षधर थे। भाषाविज्ञान की व्यापक प्रकृति पर बल देते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया कि भाषा एक सामाजिक-सांस्कृतिक उत्पाद के रूप में ही समझी जानी चाहिए। भाषाविज्ञान समाज और मानवीय व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन का विषय है। स्पष्ट है कि अर्थ उनके भाषिक अभिगम की धुरी था। इन्होंने भाषा वर्णन और विश्लेषण में अर्थ की सहायता लेने के साथ-साथ अपने कार्यों में 'अर्थ' को भी विश्लेषित किया। यही नहीं भाषा के प्रमुख अभिलक्षण के रूप में अर्थ को स्वीकार किया। उनके विचार से भाषा अनुभव के विविध तत्वों को पारम्परिक, याद्धच्छिक ढंग से उच्चरित ध्वनियों से जोड़ती है। यह कहकर सपीर भाषिक तत्वों के अर्थ का साहचर्य अनुभव जगत से स्थापित करने का प्रयास करते हैं। किसी भी विचार के लिए भाषा की अनिवार्यता एवं उसका निश्चित बाह्य रूप, इन दो पक्षों के आधार पर उन्होंने यह निरूपित किया :

(i) भाषिक रूप का अध्ययन सिर्फ उस के लिए ही होना चाहिए और

(ii) भाषा का प्रमुख उद्देश्य अर्थ प्रेषित करना है अतः रूपात्मक विश्लेषण में अर्थ को सर्वाधिक प्रच्छन्न युक्ति संगत तत्व मानना चाहिए। इसलिए रूपात्मक विश्लेषण में भाषिक तत्वों की पहचान और उनके द्वारा प्रेषित अर्थ का अध्ययन किया जाता है।

यही नहीं सपीर द्वारा प्रतिपादित 'रूप' (form) की संकल्पना भी बहुमुखी थी। 'रूप' का प्रयोग उन्होंने निम्नांकित अर्थों में किया :

(i) कोई भी स्वन या स्वनों का अनुक्रम जो अर्थवान हो, जैसे- रूपिम, शब्द अथवा वाक्य।

(ii) व्याकरणिक प्रक्रम और

(iii) व्याकरणिक संकल्पनाएँ।

ये तीनों मिल कर उस समय तक भाषा के प्रकार्यात्मक अंश का निर्माण नहीं करते जब तक उनकी उपस्थिति प्रभेदक का कार्य न करे। इस प्रकार कोई भी विश्लेषण और वर्णन भाषा में प्राप्त रूप-अर्थ की व्याकरणिक विभिन्नताओं को प्रकट करता है। रूप-अर्थ के एकीकरण को स्पष्ट करने के लिए सपीर ने व्याकरणिक संकल्पनाओं की एक संप्रत्ययात्मक रूपरेखा तैयार की जिसकी सहायता से भाषा संरचना में प्राप्त रूप-अर्थ प्रतियोगों को सूक्ष्मता से विश्लेषित किया जा सके। स्पष्ट है कि अर्थ सपीर के 'भाषिक रूप' विश्लेषण का अनिवार्य अंग था। 'ग्रेडिंग' शीर्षक वाले अपने लेख में इन्होंने अर्थ की जटिलता, अर्थ सम्बन्धों की व्याख्या, शब्द के सम्पूर्ण अर्थत्व आदि बिन्दुओं पर भी गहन चिन्तन प्रस्तुत किया। इस प्रकार सपीर ने प्रयोग, प्रकार्य और सन्दर्भ सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए अर्थ के घटकों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया।

अमरीकी संरचनावाद की द्वितीय धारा के प्रमुख भाषाविद् ब्लूमफील्ड के सम्बन्ध में प्रसारित 'अर्थ विरोधी' धारणा का कारण सम्भवतः उनका निम्नांकित कथन था- "The statement of meanings is therefore the weak point in language - study, and will remain so until human knowledge advances very far beyond its present state," लेख के शेष भाग में इस प्रकार की भ्रामक धारणाओं को दूर करने का प्रयास करते हुए ब्लूमफील्ड के कार्यों में अर्थ पक्ष पर हुए चिन्तन विश्लेषण की ओर विद्वतजनों का ध्यानाकर्षित किया जायेगा।

स्मरणीय है कि ब्लूमफील्ड की रुचि मात्र भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन और भाषाविज्ञान की सैद्धान्तिक तथा पद्धतिगत समस्याओं में ही नहीं वरन् मानवीय अध्ययनों में भी थी। उनके विचारानुसार "The study of language will be the ground where science gains its first foothold in the understanding and control of human affairs." (1930 : 152) उन्होंने भाषाविज्ञान को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित किया; एक ऐसा विषय जो परीक्षणीय साक्ष्यों के आधार पर भाषा का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करे। अपनी पुस्तक 'लैंग्वेज' तथा अन्य कार्यों में अर्थ के विषय में प्रयोग किए गए ब्लूमफील्ड के कथन इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि वह अर्थ के साथ-साथ अर्थ विश्लेषण की समस्या से भी भली-भाँति अवगत थे।

उनके अनुसार भाषा के किसी भी अध्ययन में अर्थ पर विचार करना अनिवार्य है क्योंकि, " ... **in human speech different sounds have different meanings. To study this co-ordination of certain sounds with certain meaning is to study language."** किन्तु अपनी अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिकता एवं वस्तुनिष्ठता लाने के उद्देश्य से ब्लूमफील्ड ने अर्थ के पारम्परिक प्रयोग का विरोध किया। अर्थ के आधार पर भाषिक इकाइयों की परिभाषा करना, उनका वर्गीकरण एवं विश्लेषण करना उचित नहीं माना क्योंकि इस तरह से परीक्षणीय एवं उपयोगी परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते। भाषा संरचना अर्थ को संकेतित करती है और इन अर्थों का वर्णन होना अनिवार्य है किन्तु इनकी सहायता से संरचना की पहचान और उनके मध्य अन्तर स्थापित करना उचित नहीं है।

अतः ब्लूमफील्ड के लिए मुख्य बिन्दु अर्थ का होना या न होना नहीं था वरन् अर्थ के उचित एवं अनुचित प्रयोग का था। उन्होंने अर्थ के कतिपय प्रयोगों को चुनौती दी। 'अर्थ' सदैव ही उनकी भाषिक विश्लेषण पद्धति का किसी न किसी प्रकार का अंग रहा। उनके द्वारा प्रस्तुत स्वनप्रक्रियात्मक एवं व्याकरणिक विश्लेषण में भी 'अर्थ' अन्तर्भूत था। द्वितीय विश्वयुद्ध के सैनिकों को शीघ्र नई भाषाएँ सिखाने के लिए ब्लूमफील्ड द्वारा बनाए गए पाठ्यक्रम भी इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि उन्होंने अर्थ को बहुत महत्त्व दिया।

ब्लूमफील्ड ने न केवल 'अर्थ' को पहचाना वरन् उसके परीक्षण, विश्लेषण एवं वर्णन की समस्याओं को भी समझा। उनका यान्त्रिकतावादी एवं भौतिक दृष्टिकोण उन्हें व्यक्ति विशेष में स्थित अर्थ के मानसिक पक्ष को स्वीकारने की आज्ञा नहीं देता। परिणामतः उनका झुकाव अर्थ के रूपात्मक पक्ष की ओर अधिक था। रूपात्मकता पर बल देने के कारण उन्होंने अर्थ को भी रूप में स्थित माना। उनके विचार से 'किसी भाषा के रूपों का वर्गीकरण, विन्यास एवं वर्णन करना सरल होता है किन्तु हमें कितना भी ज्ञान क्यों न हो फिर भी इन रूपों द्वारा अभिव्यक्त अर्थ का वर्गीकरण, विन्यास एवं वर्णन प्रस्तुत करना अत्यन्त दुष्कर होगा।' अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'पॉस्च्युलेट्स' (1925) के आरम्भ में ही उन्होंने प्रतिपादित किया कि हर भाषिक समुदाय में कतिपय कथन रूप और अर्थ की दृष्टि से समान होते हैं और भाषा का अध्ययन इस समन्वय/समायोजन का अध्ययन करना है। इसी पूर्वानुमान पर ब्लूमफील्ड का सिद्धान्त आधृत था। उन्होंने पारिभाषिक शब्दों के त्रिपक्षीय समुच्चय की चर्चा की और बताया कि अर्थिम (सेमीम) एवं उपार्थिम (एपिसेमीम) नामक अर्थपक्ष

की इकाइयाँ संकेतन व्यवस्था की इकाई स्वनिम और पदिम (टैक्सीम) के साथ युग्म बनाकर रूपिम एवं प्रत्ययिम/बंधिम नामक रूपों का निर्माण करती हैं। इस सहसम्बन्ध की सूक्ष्मता यह है कि कोई भी भाषिक रूप चाहे रूपिम हो या बंधिम, अर्थहीन इकाई नहीं होता वरन् यह रूप एवं अर्थ की इकाइयों के मध्य घटित सहसम्बन्ध है। यह बिन्दु ब्लूमफील्ड की रूपिम की परिभाषा द्वारा और अधिक स्पष्ट होता है जहाँ उन्होंने 'स्वन-अर्थ की आंशिक समानता का न होना' प्रत्येक रूपिम का अनिवार्य लक्षण माना है। इस प्रकार ब्लूमफील्ड के कार्यों में अर्थ को व्याकरणिक आवरण में प्रस्तुत किया गया। उनके शब्दों में "if one studies speech forms and their meanings, semantics is equivalent to the study of grammar and lexicon." उन्होंने विश्लेषण के रूपात्मक पक्ष पर बल देते हुए कहा कि किसी भी कथन का वर्णन रूपिम के आधार पर किया जा सकता है किन्तु उसके अर्थ का विश्लेषण इस विषय (भाषाविज्ञान) की परिधि में नहीं आता। किसी रूपिम का अर्थ अर्थिम कहलाता है जो भाषा की अर्थ व्यवस्था की नियत एवं निश्चित इकाई होता है। स्पष्ट है कि ब्लूमफील्ड ने किसी अर्थिम की सम्पूर्ण रूपसारिणी की प्रकृति को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया। किन्तु उनके विचारानुसार अर्थ का इसके आगे विश्लेषण सम्भव नहीं है क्यों कि भाषा में हम यादृच्छिक रूप से जागतिक वास्तविकताओं को किसी अर्थिम से जोड़ देते हैं। अतः भाषिक विश्लेषण अर्थ से आरम्भ न होकर सदैव रूप से शुरू होना चाहिए।

अपनी पुस्तक 'लैंग्वेज' के नौंवे एवं दसवें अध्याय के अन्तर्गत ब्लूमफील्ड ने जिस प्रकार अर्थ विश्लेषण को व्याकरण के अन्तर्गत रखा है उसकी परवर्ती भाषाविदों ने बहुत प्रशंसा की। आज इसे ही 'निर्वचनात्मक अर्थ विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है जिसमें शब्दावली और व्याकरणिक रूप की प्रत्येक इकाई को अर्थ की इकाई के समकक्ष रखा जाता है तथा रूप की प्रत्येक इकाई स्थिर एवं निश्चित मानी जाती है। ब्लूमफील्ड ने भाषिक रूप के अर्थ की परिभाषा 'उद्दीपक-प्रतिक्रिया' शब्दावली की सहायता से की जिससे कई विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी अर्थ की संकल्पना 'व्यवहारवाद' से प्रभावित है। मेरे विचार से उनके सिद्धान्त की यह व्याख्या उचित नहीं है। यह सत्य है कि उन्होंने व्यवहारवादी शब्दावली (उद्दीपक-प्रतिक्रिया) में अर्थ का विश्लेषण करने का प्रयास किया किन्तु ऐसा उन्होंने वाक्-घटना (speech act) के वर्णन के लिए नहीं वरन् समाज में भाषा की संप्रेषणात्मक भूमिका के स्पष्टीकरण के लिए किया। इन शब्दों के प्रयोग के पीछे उनका मन्तव्य वाक्-संकेतों

के अध्ययन की ओर ध्यान आकर्षित कर समस्त मनोवैज्ञानिक पूर्वानुमानों को त्यागना था। इसीलिए उन्होंने कहा, 'भाषाविद् मात्र वाक्-संकेतों (उ........प्र.) का अध्ययन करता है वह मनोविज्ञान एवं शरीर विज्ञान की समस्याओं को सुलझाने की योग्यता नहीं रखता।'

उपर्युक्त चर्चा इस तथ्य को स्पष्ट करती है अमरीकी संरचनावादी विद्वान ब्लूमफील्ड ने भाषा विश्लेषण एवं वर्णन में अर्थ के प्रयोग को विशेष महत्त्व दिया यही नहीं अर्थ उनके भाषिक सिद्धान्त में पूर्णतः अन्तर्भूत था। उनके अनुयायी ब्लॉक के अनुसार, 'हमारा उपागम कुछ मायनों में ब्लूमफील्ड से भिन्नता रखता है। वे अर्थ को आधारिक कसौटी मानने का आह्वाहन करते हैं।' इस संदर्भ में 29 जनवरी 1945 को एक पत्र में लिखी ब्लूमफील्ड की निम्नांकित पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:

It has become painfully common to say that I or rather, a whole group of language students of whom I am one, pay no attention to meaning or neglect it, or even that we undertake to study language without meaning simply as meaningless sound... It is not just a personal affair that is involved in the statements to which I have referred, but something which, if allowed to develop, will injure the progress of our science by setting up a fictitious contrast between students who consider meaning and students neglect uho it or ignore it. The latter class, so far as I know does not exist.

स्पष्ट है कि ब्लूमफील्ड ने न तो अर्थ की अवहेलना की और न ही उसके साथ आँख-मिचौली का खेल खेला बल्कि उन्होंने अर्थ-प्रयोग को प्रभेदक एवं व्यतिरेकी प्रकार्य तक सीमित कर अपने वैज्ञानिक विश्लेषण में एक निश्चित स्थान दिया।

* * *

# हिन्दी विज्ञापन
## आलेखात्मक विशेषताएँ

एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव के लिए सम्प्रेषणीयता की अनिवार्यता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। अपने भावों और विचारों को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त करना वह समाज में रहकर अप्रत्यक्ष रूप से सीख लेता है। यद्यपि इस उद्देश्य की पूर्ति मानव भाषा एवं भाषेतर दोनों माध्यमों की सहायता से करता है तथापि इस कार्य में भाषा की प्रमुख भूमिका रहती है। हमारे समस्त सम्प्रेषण व्यवहार की पृष्ठभूमि में समाज के नियमों की वह आचार संहिता कार्यरत रहती है जिसे हमने वर्षों समाज के सदस्य होने के नाते ग्रहण किया है। परिवेश एवं परिस्थिति के साथ-साथ सम्प्रेषण का विषय भी हमारे भाषा चयन को प्रभावित/निर्धारित करता है। ध्यातव्य है कि भाषा समान होती है वही रहती है उसका स्वरूप प्रयोग क्षेत्र—घर-परिवार, शिक्षा, व्यवसाय तथा विषय—साहित्य, विज्ञान, विधि के अनुरूप परिवर्तित होता है :

इन विशिष्ट स्थितियों अथवा विषय क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा के रूप भेद 'प्रयुक्ति' या 'रजिस्टर' कहलाते हैं। एटिचसन के विचारानुसार रजिस्टर भाषा की विशेषीकृत शैलियाँ हैं जो भाषा प्रयोग की परिस्थिति पर आधारित होती हैं। भाषा प्रयोक्ता इन शैलियों को स्थिति विशेष के अनुरूप व्यवहार में लाता है। वास्तव में भाषा में ये विविधता/रूप भेद सामाजिक सन्दर्भ के कारण उत्पन्न होती है। एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न स्थितियों में और भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के अनुरूप एक ही भाषा के अलग-अलग रूपों का प्रयोग करता है। भाषाओं में प्राप्त ये प्रयुक्तियाँ मुख्यता तीन तत्त्वों द्वारा निर्धारित होती हैं :

* शब्दावली
* वाक्य विन्यास
* शैली

कोई भी प्रयुक्ति दूसरी प्रयुक्ति से मुख्य रूप से शब्दावली के स्तर पर भिन्नता रखती है, यथा- वाणिज्य की भाषा एवं कानून की भाषा में अलग-अलग प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है। शब्दावली के अतिरिक्त वाक्य विन्यास भी एक सीमा तक विशिष्टता प्रदर्शित करता है, उदाहरणार्थ- समाचार पत्र के शीर्षकों की भाषा का वाक्य विन्यास सामान्य भाषा से भिन्न होता है। हिन्दी समाचार पत्र के निम्न शीर्षक देखें :

(i) नेगी की अप्रत्याशित हार

(ii) वाराणसी में भारी वर्षा, जनजीवन अस्त व्यस्त

एक वक्ता की बोली में अभिव्यक्ति के प्रसंग और उद्देश्य के भेद से लक्षित होने वाले अन्तर शैली (**style**) कहलाते हैं। शैली प्रयुक्ति का इतना महत्त्वपूर्ण आधार होती है कि कतिपय विद्वान शैली अथवा कथन के ढंग और प्रयुक्ति को पर्याय के रूप में स्वीकार करते हैं।

स्पष्ट है कि समाज एवं जीवन के विविध कार्यक्षेत्रों के आधार पर किसी भाषा में अनेक प्रकार की प्रयुक्तियाँ (प्रशासनिक/साहित्यिक/कानूनी आदि) प्राप्त होती हैं चूंकि विज्ञापन में भाषा का प्रयोग एक विशेष प्रयोजन से किया जाता है अतः विज्ञापनी प्रयुक्ति का भी अपने में विशेष महत्त्व होता है। 'वि+ज्ञापन' से निर्मित विज्ञापन शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है 'विशेष ज्ञान कराना या सूचना देना' किन्तु वास्तव में यह मात्र सूचना का आदान प्रदान नहीं है वरन् यह वस्तु को उपभोक्ता तक अथवा उपभोक्ता को वस्तु तक पहुँचाने का एक प्रयास है। विज्ञापन में उन सभी क्रियाओं का समावेश किया जाता है जिनकी सहायता से कोई दृश्यमान या मौखिक सन्देश इस प्रकार जनता तक पहुँचाया जाता है कि वह वस्तु को क्रय करने के लिए तत्पर हो। कह सकते हैं कि विज्ञापन का उद्देश्य होता है पाठक, श्रोता या दर्शक का ध्यान आकर्षित करना। इस कार्य की सफलता नवीनता, सुसम्प्रेषणीयता, स्मरणीयता और प्रभावशालिता पर निर्भर करती है। अतः विज्ञापन प्रति लेखक विज्ञापन की भाषा में नित नवीन प्रयोग करता है। उपभोक्ता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कहीं ध्वन्यात्मक अभिलक्षणों का प्रयोग करता है, यथा :

(i) खाओ गगन
रहो मगन

(ii) सन्डे के सन्डे
फिल्मी फन्डे

तो कतिपय विज्ञापनों में ध्वन्यात्मक के साथ-साथ शाब्दिक विशिष्टता लक्षित होती है, उदाहरणार्थ :

(i) बार बार
रिन की चमकार

(ii) चुटकी में
चुटकी से प्यार हो जाए

इसी श्रृंखला की एक कड़ी विज्ञापन प्रति में प्राप्त आलेखात्मक विशेषताएँ हैं। स्थूल रूप से समस्त विज्ञापन दृश्य एवं श्रव्य वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। शब्द संचार माध्यम द्वारा उपभोक्ता तक पहुँचने वाले विज्ञापन जहाँ पूर्णतः दृश्य होते हैं वहाँ टी.वी. में प्रसारित विज्ञापनों में दोनों वर्गों के गुण मिलते हैं। इन दोनों प्रकार के विज्ञापनों में लिपि का आश्रय लिया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं दो वर्गों में आगत हिन्दी विज्ञापनों में विज्ञापन प्रति लेखक द्वारा उत्पन्न की गई आलेखात्मक विशेषताओं का विश्लेषण किया जाएगा। ध्यातव्य है कि हिन्दी विज्ञापन की कोई विशिष्ट तकनीकी शब्दावली नहीं है किन्तु सामान्य शब्दावली का विशेष प्रकार से किया गया प्रयोग ही उसे आकर्षक, मोहक एवं स्मरणीय बना देता है। भाषा का उच्चरित रूप आधारिक/प्राथमिक होता है जिसका अनुकरण कर उसके लिखित रूप का निर्माण किया जाता है जो आश्रित/द्वितीयक कहलाता है। किसी भी भाषा में उसके उच्चरित एवं लिखित रूप के मध्य पूर्ण एकैक भाव स्थापित करना कठिन होता है। यह लिखित रूप मौखिक भाषा का यथावत प्रतिनिधि रूप नहीं बन पाता है और यही उसकी सीमा होती है। मौखिक भाषा को दृश्य एवं मूर्त चिह्नों द्वारा अभिव्यक्त करने वाली यह व्यवस्था 'लिपि' कहलाती है। यह भाषा के ध्वनि प्रतीकों को दृश्य प्रतीकों द्वारा स्थायित्व प्रदान करती है। हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि द्वारा लिखी जाती है। विज्ञापनकर्ता उपभोक्ता/क्रेता को प्रभावित करने के लिए विज्ञापनों में लिपि के स्तर पर भी नवीन प्रयोग करते हैं। आवश्यक नहीं है कि सभी विज्ञापन लिपि का प्रयोग करें, जैसे- रेडियो में प्रसारित विज्ञापनों में इसकी कोई भूमिका नहीं होती। यही नहीं कभी-कभी टी.वी. पर भी मात्र ध्वनियों और चित्रों के माध्यम से वस्तु का विज्ञापन दिया जाता है। लिपि व्यवस्था का आश्रय लेने वाले हिन्दी विज्ञापनों में लिपि सम्बन्धी

निम्नांकित विशिष्टताएं दृष्टिगत होती हैं :

1. हिन्दी के अनेक विज्ञापनों में प्रायः देवनागरी लिपि के माध्यम से उत्पाद की विशेषताओं को लिखा जाता है अथवा सूचना प्रेषित की जाती है, यथा :

(i) धनतेरस एवं दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ

(ii) आप सफर कर रहे हैं या घर बदल रहे हैं।

इस वर्ग में प्रायः शैक्षिक या जनहित में जारी किए जाने वाले विज्ञापन अथवा सरकारी सूचनाएँ आती हैं। देवनागरी में लिप्यंकित इन विज्ञापनों को आकर्षक बनाने के लिए निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जाता है :

1. क- **लिपि चिह्न का आकार ( फॉन्ट साइज )**

मुख्य शीर्षक को बड़े लिपि चिह्नों द्वारा तथा शेष को सामान्य आकार में लिखा जाता है, जैसे-

**कर्मचारी चयन आयोग**

संयुक्त स्नातक स्तरीय (प्रारंभिक परीक्षा 2005)

1. ख- **लिपि चिह्न की बनावट**

उपभोक्ता/पाठक का ध्यानाकर्षित करने के लिए विज्ञापन की शीर्ष पंक्ति या पाठ में आने वाले महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को भिन्न बनावट वाले लिपि चिह्नों द्वारा लिखा जाता है, यथा :

(i) *त्वचा ऐसी खिले कि निगाहें थम जायें।*

(ii) *ना झंझट ना झमेला,*
*है काफी यही अकेला।*

थोड़ा तिरछा कर के लिखे गए ये वाक्य पाठक का ध्यान शीघ्र ही अपनी तरफ खींचते हैं।

1. ग- **लिपि चिह्न के रंग में भिन्नता**

प्रायः रंगीन विज्ञापनों में इस प्रकार की भिन्नता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। वहाँ मुख्य पंक्ति को भिन्न रंग से लिखा जाता है तथा शेष

विज्ञापन भिन्न रंग से। सिर्फ सफेद एवं काले रंग से लिखे विज्ञापनों में विशिष्टता उत्पन्न करने के लिए शीर्ष के लिपिचिह्नों के आकार-प्रकार के साथ उसका शेड भी परिवर्तित किया जाता है, जैसे- 'डाबर' के विज्ञापन में 'डाबर' तिरछा और काले रंग से लिखा गया जबकि 'चूर्ण' सीधा और ग्रे रंग से। साथ ही विज्ञापन के एक कोने में `Dabur' रोमन में सफेद रंग से अंकित है। कुल मिला कर लिपि चिह्नों में रखी गई ये रंग व्यवस्था विज्ञापन को आकर्षक बनाती है।

2. आजकल हिन्दी विज्ञापनों में तकनीकी शब्द ही नहीं वरन् अनेक बोलचाल के सामान्य शब्दों के लिए भी अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का प्रचलन है। विज्ञापन में आगत इन अंग्रेजी शब्दों का दो प्रकार से अंकन किया जाता है :

2. क- **अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी में लेखन**

इन विज्ञापनों में हिन्दी के साथ-साथ आगत अंग्रेजी शब्दों को भी देवनागरी में लिखा जाता है, द्रष्टव्य है :

(i) डी.वी.डी. प्लेयर बिल्कुल मुफ्त

(ii) आपके मोबाइल के लिए मज़ेदार और दिलचस्प डाउनलोड

(iii) देशव्यापी सेल्युलर सेवा

2. ख- **अंग्रेजी शब्दों का रोमन में लेखन**

अनेक विज्ञापनों में भाषा के साथ-साथ लिपि व्यवस्था का मिश्रण भी दृष्टिगत होता है। ये विज्ञापन लिपि संकरीकरण के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं, यथा :

(i) पेश है Hello Tunes एल्बम

(ii) LG My PC जो दिलाए बेहतर होने का एहसास

(iii) आपका HAIR DOCTOR

3. आलेखात्मक दृष्टि से विज्ञापन को आकर्षक एवं मनमोहक बनाने के लिए प्रायः विज्ञापन प्रति लेखक हिन्दी भाषा को रोमन लिपि द्वारा भी

लिख देते हैं, जैसे- एक विज्ञापन में भिन्नता लाने के लिए सम्पूर्ण विज्ञापन देवनागरी में लिखा गया किन्तु मुख्य पंक्ति रोमन में भिन्न आकार, रंग व बनावट वाले लिपि चिह्नों की सहायता से लिखी गई, जैसे :

(i) jiyo zee bhar ke

(ii) Aage bado

4. कतिपय विज्ञापनों में रोमन में लिखी गई कुछ ऐसी पंक्तियाँ दृष्टिगत होती हैं जिनकी विशेषता यह है कि उनमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी शब्द भी हैं और जो रोमन में ही लिखे गए हैं, उदाहरणार्थ :

(i) Tough bhi
Soft bhi

(ii) Chai- Time- Masti

(iii) Monsoon Hungama

5. यही नहीं उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करने के लिए कुछ विज्ञापन कर्ता गणितीय चिह्नों (+, -, =, ◈), विराम, प्रश्न चिह्न, विस्मयादिबोधक चिह्न तथा अंग्रेजी में अधूरे अंशों के आगे प्रयुक्त होने वाले तीन बिन्दुओं (...) का प्रयोग भी करते हैं, उदाहरणार्थ :

(i) आँवला + ठंडक = असली ठंडक

(ii) चाँद से चेहरे पर दाग?

(iii) बनी रहे बात, न छूटे साथ...

(iv) कमला पसन्द
इसके जैसा!
कोई नही...

6. देवनागरी एवं रोमन लिपि के मिश्रण का एक अत्यन्त रोचक उदाहरण हिन्दी समाचारपत्र में प्राप्त हुआ, द्रष्टव्य है :

अpana PC

यहाँ प्रथम शब्द का एक अक्षर देवनागरी तथा शेष शब्द रोमन में लिप्यंकित हैं तथा दूसरा शब्द जो अंग्रेजी का परिवर्णी शब्द है पूरा रोमन में लिखा गया है।

अपनी सम्पूर्णता में यह विज्ञापन अत्यन्त आकर्षक है और इसे देखते ही पाठक सम्पूर्ण विज्ञापन पढ़ने के लिए प्रेरित होता है। विज्ञापन की यह आलेखात्मक विशिष्टता पाठक के मानस पर अमिट छाप छोड़ती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी विज्ञापनों में लेखन सम्बन्धी अनेक ऐसी विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं जो इन विज्ञापनों को शेष से भिन्न प्रतिपादित करती हैं। परिणामस्वरूप पाठक या उपभोक्ता आकर्षित हो इनको ध्यान से पढ़ सम्बद्ध वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रेरित होता है। आलेखात्मक स्तर पर उत्पन्न की गई ये भिन्नताएँ विज्ञापन की सम्प्रेषणीयता के साथ-साथ उसकी स्मरणीयता में भी वृद्धि करती हैं और उपभोक्ता को वस्तु क्रय करते समय उत्पाद का नाम व विशेषताएँ स्मरण हो आती हैं।

***

# खण्ड - 2 जनजातीय भाषाविज्ञान

- भाषिक परसंस्कृतिग्रहण - राजी के सन्दर्भ में
- क्या राजी एक लुप्तप्राय भाषा है?
- भाषा परिवृत्ति और अनुरक्षण - जनजातीय भाषा 'राजी'
- जनजातीय शिक्षा में मातृ भाषा की भूमिका
- दो मध्य-पश्चिमी हिमालयी बोलियों में प्राप्त सांस्कृतिक एवं भाषिक समानताएँ
- राजी व खामची की स्वनप्रक्रियात्मक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

# भाषिक परसंस्कृतिग्रहण
## राजी के सन्दर्भ में

दो या अधिक संस्कृतियों के परस्पर मिश्रण एवं संलयन का परिणाम परसंस्कृतिग्रहण (acculturation) कहलाता है चूंकि भाषा संस्कृति का अविकल और अभिन्न अंग है अतः इस प्रकार के सम्पर्क और मिश्रण का प्रभाव सम्पर्कित संस्कृतियों की भाषा में भाषिक इकाइयों के परिवर्तन के रूप में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

राजी एक आदिम जनजाति है जो कुमाऊँ अंचल के पर्वतीय जनपद पिथौरागढ़ और चम्पावत के सघन वनों में बसी छोटी-छोटी नौ बस्तियों- किमखोला, चिपलतरा, भकतिरवा, गनागाँव, कन्तोली, अलतड़ी, मदनपुरी, कूटाचौरानी और जमतड़ी में रहते हैं। ये बस्तियाँ दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं पर दो सौ किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में फैली हैं। इन गाँवों तक पहुंचने के लिए कहीं पाँच-छह किलोमीटर तो कहीं-कहीं दस-ग्यारह किलोमीटर तक पर्वतीय पगडन्डियों पर चलना पड़ता है। उत्तर प्रदेश पर्वतीय विकास विभाग द्वारा 1993 में की गई जनगणना के अनुसार एक सौ अट्ठारह परिवारों में रहने वाले राजियों की कुल जनसंख्या पाँच सौ चार थी।

पारम्परिक राजी जनजाति जीवन के सांस्कृतिक एवं सामाजिक यर्थाथ का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि लगभग पाँच छह दशकों पूर्व तक ये लोग आधुनिक सभ्यता संस्कृति से दूर नवपाषाणयुगीन मानव की भाँति रहते थे और शिक्षा से कोसों दूर, सम्प्रेषण एवं आवागमन साधनहीन, अन्तः एवं आन्तर जनजाति सम्बन्धों से परे एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। इनकी अपनी विशिष्ट परम्पराएँ और मान्यताएँ थीं जो इनके पड़ोसी कुमाउँनी एवं भोटिया समुदायों से भिन्न थी। किन्तु सम्प्रति उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। आज कृषि, जंगल से लकड़ी काटना या खेतिहर मजदूर का कार्य उनकी

जीविका के प्रमुख साधन हैं। उनका जीवन स्थिर हो गया है। अन्य समुदायों से सम्पर्क के कारण इनके रहन-सहन, खान-पान और बोलचाल अर्थात् सम्प्रेषण अभिरचना में कतिपय संरचनात्मक एवं आधारभूत परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। सांस्कृतिक सामाजिक परिवर्तन की इस धारा से उनकी बोली/भाषा राजी भी अछूती नहीं रही है। जिसमें आदान, विसरण या व्याघात प्रक्रियाओं द्वारा घटित भाषिक परसंस्कृतिग्रहण के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं।

यह बिन्दु अवलोकनीय है कि लगभग पिछले सौ वर्षों से राजी जनजाति पूर्णतः असम्बद्ध दो प्रधान भाषिक समुदायों के सम्पर्क में आ रहा है- एक कुमाउँनी जो उनके शिक्षित एवं समृद्ध पड़ोसियों की भाषा है और दूसरी हिन्दी जो सरकारी कर्मचारियों एवं अध्यापकों की भाषा है। ये सरकारी कर्मचारी सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं के अन्तर्गत इनकी बस्तियों में आते-जाते रहते हैं। यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जहाँ ये दोनों भाषाएँ भारतीय आर्य परिवार की हैं वहाँ राजी भाषा का वंशानुक्रमिक सम्बन्ध सुनिश्चित नहीं है। कुछ भाषाविद् इसे तिब्बती-बर्मी परिवार की पुत्री मानते हैं जबकि कुछ अन्य इसका सम्बन्ध हिमालय प्रदेश में प्राचीन काल में प्रचलित मुण्डा बोलियों से जोड़ते हैं। आज अनेक उदाहरण इस बात को प्रमाणित करते हैं कि थोड़े से समय के सम्पर्क में ही राजी जाति ने पड़ोसी कुमाऊँ लोगों की जीवन शैली के साथ-साथ उनके रीति-रिवाज अपनाने भी आरम्भ कर दिए हैं। अब ये लोग विवाह संस्कार कुमाउँनी पण्डित द्वारा सम्पन्न करवाना पसन्द करते हैं साथ ही बारात का भी प्रचलन हो गया है। इसी प्रकार आज राजी लोग बहुधा मृत शरीर का दाह संस्कार भी करते हैं जबकि पहले ये मृतक का शरीर जंगल में फेंक देते थे। स्पष्ट है कि राजी लोगों ने यद्यपि अपने जनजाति संस्कारों को पूर्णरूपेण नहीं त्यागा है तथापि ये धीरे-धीरे कुमाउँनी हिन्दुओं के रहन-सहन, खान-पान के रीतिरिवाज अपना रहे हैं जो इनके समाज में कार्यशील सांस्कृतिकरण प्रक्रम का परिचायक है। चूंकि भाषा न केवल संस्कृति का महत्त्वपूर्ण एवं आधारी अंग है वरन् उसे अभिव्यक्त और उद्घाटित करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम भी है अतः संस्कृति में लेशमात्र परिवर्तन भी भाषा में प्रतिबिम्बित होता है। परिणामतः राजी समुदाय द्वारा प्रभावशाली पड़ोसी कुमाउँनी संस्कृति से ग्रहण की गई प्रथाओं, रीतियों, वस्तुओं एवं पदार्थों के साथ इनके सूचक शब्द भी भाषा द्वारा ग्रहण कर लिए गए हैं। इन दोनों संस्कृतियों का सम्पर्क यद्यपि नवीन है तथापि सम्पर्क ने सम्प्रेषण अभिरचनाओं को प्रभावित कर परसंस्कृतिग्रहण प्रक्रम की गति को बढ़ावा दिया है। राजी जाति की नई पीढ़ी शनैःशनैः सामाजिक-

आर्थी कूपमण्डूकता और संकीर्णता को त्याग रही है और बाह्य जगत से सम्पर्क के कारण नवीन अनुभवों से गुजर रही है। दुर्गम पर्वत श्रंखलाओं की ढलानों पर सघन वनों के बीच बसी बस्तियों में रहने वाले वृद्ध राजी प्रायः एकभाषी (monolingual) हैं जबकि कुमाउँनी पहाड़ियों के गांवों के निकट स्थित बस्तियों के निवासी बहुधा द्विभाषी (bilingual) हैं। इस वर्ग में ज्यादातर प्रौढ़ एवं युवा वक्ता आते हैं जो बातचीत के समय अधिकाधिक कुमाउँनी शब्दों का प्रयोग करने में गर्व समझते हैं, यथा- 'नङ् नाव दूर हवै (मेरा गाँव दूर है); अइ गाली बे हा रहे (वह गाली दे रहा है); नङ् नामू घै ही (तुम्हारा नाम क्या है?)। स्पष्ट है कि द्विभाषिकता की मात्रा आंशिक है। रोचक तथ्य यह है कि राजी जाति के स्कूल जाने वाले बच्चे तथा कुछ युवक एवं युवतियाँ बहुभाषिक (multilingual) भी हैं जिन्हें राजी और कुमाउँनी के अतिरिक्त हिन्दी का भी अल्पज्ञान है।

राजी बस्तियों के पास प्रचलित कुमाउँनी बोलियों ने राजी भाषा को दो प्रकार से प्रभावित किया है- प्रथमतः आदान के कारण भाषा में नवीन शब्द आए हैं, द्वितीयतः आगत शब्दों ने अनेक राजी शब्दों को प्रतिस्थापित किया है। परिणामतः पूर्व प्रचलित राजी शब्द के स्थान पर कुमाउँनी शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। वस्तुओं, उपादानों, रीति रिवाजों आदि समस्त नवीन अनुभवों के साथ तत्सम्बन्धी नामसूचक शब्द (nominals) राजी शब्दावली का अंग बन गए हैं। यही नहीं क्रिया सूचक शब्दों ने भी राजी संरचना में स्थान बना लिया है, उदाहरणार्थ - नच्चो-नाचना; गना-गाना; थुके-थूकना जो पुनः कुमाउँनी प्रभुत्व का सूचक है। साथ ही राजी भाषा में कतिपय आगत मिश्र शब्द (loan blends) भी मिलते हैं जो इस तथ्य के संकेतक हैं कि राजी मातृभाषियों में कुमाउँनी भाषिक व्यवस्था के अनुकरण की प्रवृत्ति आगत शब्दों को अपनी भाषा संरचना के अनुकूल निर्मित करने की प्रवृत्ति की तुलना में अधिक है। मिश्र शब्दों के कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं :

| **राजी** | **हिन्दी** |
|---|---|
| नरङ् | सन्तरा |
| पलङ् | पालक |
| दुधङ् | दूध |
| इकुम्ङ् | ईख |

सम्पर्क के कारण राजी समाज की आर्थिक व्यावसायिक संरचना में अतीव परिवर्तन आया है। राजी लोगों ने कुमाउँनी पड़ोसियों से व्यवसाय, तकनीकियाँ,

उपकरण और साधन ही नहीं तत्सम्बन्धी भाषिक मद (linguistic item) भी ग्रहण किए हैं। प्रायः ये भाषिक मद अपने मूलरूप में ही मिलते हैं, यथा- आरी, दराती, चिरान। कतिपय शब्दों में स्वनप्रक्रियात्मक परिवर्तन भी घटित हुए हैं किन्तु फिर भी ये शब्द राजी शब्द संरचना से असंयोज्य है और शीघ्रता से आगत शब्द के रूप में पहचाने जा सकते हैं, यथा :

| **राजी** | **कुमाउँनी** |
|---|---|
| फौरा | फौड़ी |
| जम्फूर | जम्बूरा |

जहाँ तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है परसंस्कृति ग्रहण ने इसके भाषायी एवं भाषेतर दोनों पक्षों को बहुत प्रभावित किया है। वर्तमान समय में राजी समाज के बदलते परिवेश के अनुरूप राजी भाषा में अनेक कोशीय मदों का आदान हुआ है, जैसे- इस्कूल, सरकारी, दुकान, टाप (top), आपिस (office) शब्द। यद्यपि राजी अपने वन्य जीवन को छोड़ना नहीं चाहते हैं तथापि कुछ परिवार अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं। उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हो रही है। सम्भवतः वे अपने बच्चों को दोनों परिवेशों से परिचित कराना चाहते हैं। सरकार ने इन्हें अनुसूचित जनजाति वर्ग में रखा है किन्तु ये स्वयं को हिन्दू बताते हैं और अपने बच्चों का नामकरण हिन्दू देवी-देवताओं पर करते हैं, जैसे- सीता, जानकी, नन्दा, राम आदि। यही नहीं राजी लोग द्वितीय नाम भी कुमाउँनियों की भाँति प्रयोग करते हैं, जैसे- सिंह, पाल। राजी समुदाय में विवाह संस्कार में दो मुख्य अनुष्ठान होते हैं 'मंगजंगी' अर्थात् विवाह प्रस्ताव और 'टीका'। 'टीका' एक आगत सांस्कृतिक शब्द है जो इनके द्वारा पूर्णतः भिन्न अनुष्ठान के लिए प्रयोग किया जाता है।

अन्य जनजातियों की भाँति राजी जाति भी समृद्ध वनस्पति एवं जीवजन्तु युक्त परिवेश में रहते हैं और राजी भाषा में इनका स्पष्ट वर्गीकरण तथा नामांकन भी मिलता है किन्तु कुमाउँनी भाषा के प्रभाव से यह पक्ष भी अछूता नहीं रहा है, यथा :

| **राजी** | **कुमाउँनी** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| माल्टा | मालटा | मौसम्बी |
| तुरयो | तुरयो | तुरइ |
| खुरसनी | खुरसनी | मिर्चा |

| | | |
|---|---|---|
| कक्ड़्या | कक्ड़या | ककड़ी |
| पिन्डा | पिड़ालू | अरबी |
| बिरारि | बिराउ | बिल्ली |
| बाघो | बाग | शेर |
| काकेर | काकेर | गिलहरी की भाँति एक जानवर |

भाषिक आदान में कभी-कभी एक विशेषता यह मिलती है कि विशिष्ट अर्थ के सूचक शब्द द्वितीय भाषा में जाने के बाद सामान्य अर्थ का द्योतन करने लगते हैं। इस प्रवृत्ति के उदाहरण भी राजी भाषा में मिलते हैं, जैसे- राजी में 'गिदा' का अर्थ 'चिड़िया' होता है जबकि कुमाउँनी में 'गिद्ध' अर्थात् एक विशेष प्रकार की चिड़िया।

आदान का एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि प्रायः भाषाएँ आधारभूत शब्दावली (जैसे- सर्वनाम, संख्यासूचक शब्द, अंगों के नाम, सम्बन्ध सूचक शब्द, रंगों के नाम) में उस समय तक परिवर्तन स्वीकार नहीं करती हैं जब तक देय भाषा बहुत प्रभावी न हो और ग्राहक भाषा उसके प्रति सम्मान की भावना न रखती हो। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इतने कम समय के सम्पर्क में ही कुमाउँनी अभिव्यक्तियों ने इन क्षेत्रों में भी प्रवेश कर लिया है, जैसे :

| **राजी** | **कुमाउँनी** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| बहिनी | बहिनी | बहन |
| ज्वाँई | ज्वाँई | दामाद |
| अँगुल्या | अँगुली | अँगुलि |
| कम्रै | कम्बर | कमर |
| नीलो | नीलो | नीला |
| धौरया | धवल | सफेद |
| पेरो | पीलो | पीला |

राजी लोग वर्तमान के लिए जीते हैं और खाद्य पदार्थों अथवा आवश्यक वस्तुओं का संचय या संग्रह करना इनका स्वभाव नहीं है। इसका कारण धनाभाव और

इनका पिछला यायावर जीवन भी कहा जा सकता है। इनकी आवश्यकतानुरूप भाषा में छह तक संख्या सूचक शब्द हैं। आगे की गणना के लिए ये लोग कुमाऊँनी आगत शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनमें कहीं आंशिक स्वन विकृति दृष्टिगत होती है तो कहीं पूर्व की भाँति रूप रहता है, यथा :

| **राजी** | **हिन्दी** |
|---|---|
| खात्त | सात |
| आट्ठ | आठ |
| नौव | नौ |
| दख | दस |
| डाहजार | एक हजार |

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि राजी भाषिक समुदाय अपनी श्रृंखलाओं को तोड़ कुछ समय पूर्व ही बाहर आया है और कुमाउँनी भाषिक समुदाय से इसका सम्पर्क पिछले पाँच छह दशकों में ही बढ़ा है किन्तु सामाजार्थिक शक्ति एवं समर्थ सांस्कृतिक ताकतों द्वारा प्रारम्भ की गई अन्तर्प्रक्रिया उन्हें धीरे-धीरे द्विभाषिकता की ओर प्रोत्साहित कर रही है। सम्भवतः इसीलिए पूर्वप्रचलित राजी शब्दों के स्थान पर कुमाउँनी शब्द प्रयोग का प्रचलन बढ़ रहा है और अनेक राजी शब्दों का स्थान कुमाउँनी आगत शब्दों ने ले लिया है, यथा :

| **राजी** | **कुमाउँनी** | **हिन्दी** |
|---|---|---|
| दुक्कइया | कक्का | चाचा |
| या | इजा | माँ |
| बा/बूबू | बाबू | पिता |
| ब्वी | पुट्ठि | पीठ |

राजी कुमाउँनी सम्पर्क का प्रतिफलन मुख्यतः कोशीय इकाइयों के क्षेत्र में दृष्टिगत होता है किन्तु व्याकरणिक आदान के भी उदाहरण मिलते हैं, यथा- संबंध सूचक चिह्न 'के', 'को' 'अई के गड़ौ' 'उसकी लड़की'। व्याकरणिक स्तर पर आदान में कमी से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः आन्तरिक संरचना (deep

structure) के स्तर पर आदान होने के पूर्व ही शीघ्रता से परिवर्तित हो रही राजी भाषा लुप्त हो जाएगी। अन्ततः यह कह सकते हैं कि राजी समाज में भाषिक परसंस्कृतिग्रहण संस्कृति के भाषेतर पक्षों के पूरक और सम्पूरक रूप में घटित हुआ है ओर अनेकानेक कुमाउँनी भाषायी एवं भाषेतर तत्व आज राजी समुदाय का अभिन्न अंग बन गए हैं।

❋ ❋ ❋

# क्या राजी एक लुप्तप्राय भाषा है?

उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वानों की यह धारणा थी कि अन्य जैविक उपादानों की भाँति भाषा भी एक सुनिश्चित जीवन चक्र पूरा करती है। उस काल के मूर्धन्य भाषाविद् श्लाइखर के विचारानुसार, ''भाषा का अध्ययन एक प्राकृतिक और ऐतिहासिक विज्ञान है तथा भाषाएँ जन्म ले विकसित होती है तथा क्षय होते हुए अन्य जैविक प्राणियों की भाँति मृत हो जाती हैं।'' यद्यपि सम्प्रति विद्वान इस प्रकार की धारणा को अधिक मान्यता नहीं देते हैं तथापि पिछले कुछ वर्षों से भाषा-विलुप्ति, भाषा-आत्महत्या, भाषाई जाति संहार जैसे अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भाषा-लोप/भाषा निसंघर्षण/भाषा संकट जैसी स्थितियों की व्याख्या के सन्दर्भ में किया जा रहा है।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि भाषा मात्र संदेश सम्प्रेषण का साधन नहीं होती वरन् अपने वक्ता को एक पहचान देती है। भाषा उसके व्यक्तित्व व अस्मिता का अभिन्न अंग है। यही नहीं किसी समाज के सांस्कृतिक मूल्यों, नियमों का पीढ़ी दर पीढ़ी संवहन भी इसी माध्यम द्वारा होता है। जब भिन्न भिन्न भाषाएँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तब वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं और प्रायः राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से समृद्ध भाषा कमजोर भाषा पर हावी हो जाती है। समाज का आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण भाषाओं में विलयन की स्थिति को बढ़ावा देता है। इन दोनों ही प्रक्रियाओं में भाषा के प्रकार्य (function) घट कर उसके प्रयोग क्षेत्र को संकुचित करते हैं। बोलने वालों की संख्या कम हो जाती है और भाषा में संरचनागत परिवर्तन होने आरम्भ हो जाते हैं। परिणामतः भाषा शनैः शनैः लुप्त होने लगती है। यह स्थिति भाषा परिवृत्ति के साथ मिलकर भाषा विलुप्ति की स्थिति को जन्म देती है। भाषा विलुप्ति के कारणों का उल्लेख करते हुए भाषाविद् डेविसन ने कहा कि, ''भाषाएँ किसी नियम के घिस जाने पर नहीं मरती वरन् उनकी मृत्यु का प्रमुख कारण उसके बोलने वालों की अपनी मातृभाषा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति

होती है।'' भाषाविद् डोरियन के विचारानुसार, ''यदि भाषा का संचरण रुक जाए और बचे हुए वक्ता धीरे-धीरे कम होते हुए समाप्त हो जाए तो भाषा को मृत माना जा सकता है।'' वास्तव में देखा जाए तो भाषा विलुप्ति अन्य प्रकार के भाषा परिवर्तनों से भिन्न नहीं है किन्तु जिस गति से भाषा में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं वह गति भिन्न होती है (शिमडिट : 1985)। कैम्पबेल ने अध्ययन के आधार पर भाषा विलुप्ति के चार प्रकारों की चर्चा की :

(i) आकस्मिक विलुप्ति - जब किसी भाषा के सभी बोलने वाले अचानक मर जाए या मार दिए जाए तो यह स्थिति उस भाषा की आकस्मिक विलुप्ति का कारण बनती है।

(ii) परिवर्तनवादी विलुप्ति - जब किसी प्रकार के राजनैतिक दबाव के कारण भाषा-क्षय अत्यन्त तीव्र गति से घटित हो।

(iii) सम्पर्क के कारण - जब कोई भाषा समृद्ध भाषा की ओर धीरे-धीरे खिंचती हुई उसमें अन्तर्निहित हो जाए। ऐसी स्थिति में द्विभाषिकता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

(iv) प्रयोग क्षेत्र में ह्रास- जब किसी भाषा का प्रयोग आरम्भ में परिवार में फिर धीरे-धीरे विभिन्न शैलीगत प्रयुक्तियों में कम होता हुआ समाप्त हो जाए।

भाषा-संनिघर्षण एक जातिगत शब्द है जो भाषिक संरचना में घटित क्रमिक ह्रास अथवा लोप की ओर संकेत करता है। यह स्थिति व्यक्तिगत एवं समाज दोनों स्तरों पर दृष्टिगत होती है। यही नहीं दो पीढ़ियों के बीच भी भाषा संनिघर्षण की स्थिति मिलती है। समान पीढ़ी में हुआ भाषा-क्षय परिवृत्ति का संकेतक कहा जा सकता है जो धीरे-धीरे प्रथम भाषा को विलुप्ति की दिशा में ढकेलता है। स्पष्ट है भाषा-विलुप्ति/भाषा-संनिघर्षण/भाषा लोप एक सामाजिक घटना है जिसका कारण किसी समुदाय की सामाजिक आवश्यकताएँ होती हैं। प्रायः प्रचलित प्राचीन भाषा के स्थान पर नवीन/आधुनिक सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से सम्मानीय भाषा का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार शहरीकरण, औद्योगीकरण, अज्ञानता, व्यवसाय, आव्रजन, परसंस्कृतिग्रहण, पारम्परिक मान्यताओं एवं विश्वास का लोप, जाति व्यवस्था और धर्म परिवर्तन के साथ साथ अनेक मनोवैज्ञानिक कारण जैसे- हीन भावना, संवेगात्मक दबाव आदि इस सम्पूर्ण प्रक्रम के प्रमुख आधारिक कारण कहे जा सकते हैं।

कभी-कभी भाषाविद् मिश्रित भाषाओं (पिजिन, क्रियोल) तथा भाषा-विलुप्ति में समानता की चर्चा करते हैं। देखा जाए तो सतही तौर पर किया गया अध्ययन ऐसे संकेत देता है अन्यथा वास्तव में इन दोनों प्रक्रमों में बहुत भिन्नता है (डोरियन 1981)। भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है जहाँ भाषाओं का पिजनीकरण एक सामान्य घटना है तथा यहाँ की भाषिक स्थिति में कोड-मिश्रण और अन्तरण को सम्प्रेषण में बाधक न मानकर सहायक माना जाता है। इनकी सहायता से वक्ता प्रायः नए सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दबावों का सामना करने तथा नूतन परिस्थिति में सम्प्रेषण करने का प्रयास करता है (पटनायक : 1999)। फिर भी इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि आज अनेक जनजातीय समुदायों ने या तो अपनी भाषा का पूर्णतः त्याग कर दिया है अथवा वे मातृ भाषा को त्यागने की प्रक्रिया की ओर अग्रसर है। परिणामतः आओ, अगरिया, आइमो जैसी अनेक भाषाएँ आज लोप के कगार पर खड़ी हैं। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य आदिम जनजातीय भाषा राजी में घटित इसी भाषा-लोप की प्रक्रिया को मूल्यांकित करना है।

## जंगल के राजा 'वनराजी'

लगभग 1800 ईसवी से यह जनजाति आखेटक-संग्राहक की भाँति उत्तरांचल के पिथौरागढ़ क्षेत्र के सघन वनों में रहती है। आरम्भ में ये कुल्हाड़ी व जाल की सहायता से जंगली जानवरों विशेषतः लंगूर का शिकार करते थे। वर्तमान समय में ये इस पर्वतीय क्षेत्र के सघन वनों के भीतर बसी नौ बस्तियों में रहते हैं। यद्यपि आज ये जाति स्थिर जीवन बिताने का प्रयास कर रही है और मछली पकड़ना, खेती करना, जंगल में लकड़ी काटना अथवा पास के गाँवों में मजदूरी करना आदि इनके पेट भरने के प्रमुख साधन हैं तथापि इनकी यायावर प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है। आज भी ये जनजाति कुछ अन्धविश्वासों, वैवाहिक-रीतियों एवं मनोवैज्ञानिक कारकों के परिणामस्वरूप अपना निवास स्थान छोड़ देती है। सम्भवतः इसी कारण अपना घर, गांव, देश जैसी अवधारणाएँ- राजी साइके (psyche) में स्थान नहीं रखती हैं। यह समुदाय विषमरूपी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में रहते हुए भी अपने पड़ोसी कुमाउँनी लोगों से बहुत मेलजोल रखना पसन्द नहीं करता है और आरम्भ से आज तक लगभग अलगाव का जीवन जी रहा है (ट्रेल 1823, रस्तोगी 2003)। कुमाउँनी लोग इन्हें 'अदृश्य व्यापारी' (इनविजिबिल ट्रेडर्स) नाम से पुकारते थे क्योंकि राजी लोग गेंठी व सानन नामक वृक्षों की लकड़ी से 'थेकी' एवं 'पला' नामक लकड़ी के बर्तन बनाते

और रात्रि के अंधेरे में उनके घर के बाहर रख जाते तथा बदले में जिस वस्तु (अनाज, सब्जी आदि) की आवश्यकता होती उसका चित्र जमीन पर बना देते थे (मजूमदार : 1944)। ये स्वयं को हिन्दु धर्मावलम्बी बताते हैं किन्तु इनके देवताओं के नाम भिन्न हैं। इस समुदाय में गोत्र के स्तर पर सजातीय एवं गाँव के स्तर पर अन्तर्जातीय विवाह की परम्परा मिलती है।

इस जाति की भाषा के विषय में आज भी अत्यन्त अल्प जानकारी उपलब्ध है। मैटिसॉफ (1995) इसे चीनी-तिब्बती परिवार की बोडिक शाखा के मध्य-पश्चिमी हिमालयी वर्ग से सम्बन्धित मानते हैं। स्वरूपगत विशेषताओं के आधार पर ये चेपांग, खाम, खामची व मगर भाषाओं से घनिष्ठतः सम्बन्धित है (फोर्टियर, रस्तोगी : 2004)। इसके वर्तमान स्वरूप में आर्य परिवार की भाषाओं (हिन्दी एवं कुमाउँनी) के आगत तत्व बड़ी संख्या में मिलते हैं।

## जनसंख्या

समय-समय पर शोधार्थियों ने इस जाति की सही जनसंख्या एकत्रित करने का प्रयास किया लेकिन 'घुमन्तू' जाति होने के कारण जनसंख्या की सही गणना का ज्ञान करना कठिन कार्य था। इनकी जनसंख्या की प्रथम सूचना 1823 में सी.डब्लू. ट्रेल ने दी और 20 परिवारों का उल्लेख किया। 1865 में कैप्टेन स्ट्रैची को मात्र 5-6 राजी परिवार मिले। स्वतन्त्रता के पश्चात 1969 में हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में इनकी संख्या 254 बताई गई। जो दो वर्ष पश्चात 10.23 प्रतिशत घटकर 228 रह गई (बिष्ट : 1994)। आश्चर्यजनक है कि इसी विभाग में 1981 में पुनः इनकी कुल जनसंख्या 371 बताई जबकि जनसंख्या विभाग ने 1087 के आंकड़े प्रस्तुत किए। 1991 की जनसंख्या रिपोर्ट में यह संख्या घट कर पुनः 356 रह गई। 1998 में प्रस्तुत प्रो. देवसिंह पोखरिया की रिपोर्ट के अनुसार नौ बस्तियों में इनकी कुल संख्या 667 है।

## भाषा-लोप सम्बन्धी अभाषिक एवं भाषिक तत्वों का मूल्यांकन

भाषा-लोप एक क्रमिक एवं निरन्तर घटित होने वाला प्रक्रम है। किसी भाषा के प्रकार्यात्मक एवं संरचनात्मक परिवर्तन का मूल्यांकन एक महत्त्वपूर्ण एवं

कठिन कार्य कहा जा सकता है। 1988 में डोरियन ने भाषा-विलुप्ति से सम्बन्धित तीन लक्षणों की चर्चा की :

1. प्रयोक्ताओं की संख्या में कमी
2. प्रयोग क्षेत्र का ह्रास
3. संरचनात्मक सरलीकरण

राजी भाषा में होने वाले क्रमिक लोप को इन्हीं तीन बिन्दुओं पर मूल्यांकित किया जाएगा। किसी समुदाय की जनसंख्या में होने वाली निरन्तर गिरावट भाषा ह्रास का प्रतीक मानी जाती है और राजी समुदाय के जनसंख्या आँकड़े लगातार घटते-बढ़ते दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि इस प्रकार की कमियाँ सरकारी आँकड़ों पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं तथापि यह निश्चित है कि इनकी जनसंख्या दिन प्रतिदिन कम हो रही है। यह सम्पूर्ण समुदाय गरीबी की रेखा के नीचे आता है और जीवन यापन के लिए अपने पड़ोसी कुमाउँनी बोलने वाले, राजनैतिक, आर्थिक दृष्टि से समृद्धतर वक्ताओं पर निर्भर करता है। अतः इनके मन में अपनी संस्कृति व भाषा के लिए हीन भावना घर कर गई है। इनकी कम होती जनसंख्या का एक कारण अशिक्षा भी है। उचित शिक्षा के अभाव में ये निम्न सामाजिक, आर्थिक स्थिति में निवास कर रहे हैं। इस प्रकार भुखमरी, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, आर्थिक विपन्नता व बस्तियों की भौगोलिक स्थिति आदि के कारण इस समुदाय में मृत्युदर ज्यादा है। मानवशास्त्रियों का मानना है कि लम्बे समय से सगोत्रीय विवाह के कारण भी इनकी आयु धीरे-धीरे कम हो रही है। सर्वे के दौरान सबसे अधिक आयु की महिला की उम्र 60 वर्ष पाई गई। यही नहीं बाबा, परबाबा जैसे सम्बन्धों के लिए शब्द पूछने पर प्रायः यह उत्तर मिला कि 'उसे किसने देखा है'।

जनसंख्या के साथ-साथ अधिशासित समुदाय की अपनी भाषा के प्रति अभिवृत्ति तथा अधिशासी समुदाय की उस भाषा के प्रति सोच जैसे मनोवैज्ञानिक कारक भी भाषा-लोप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राजी समुदाय की भाषा प्रवृत्ति जानने के उद्देश्य से मनोवादी उपागम के आधार पर एक प्रश्नावली तैयार कर चार राजी बस्तियों (अल्तड़ी, जमतड़ी, किमखोला, कूटाचौरानी) में भरवाई गई। प्रश्नावली के आधार पर प्राप्त सामग्री को निम्न तालिकाओं में वर्गीकृत किया गया।

## राजी भाषा का क्षेत्रवत प्रयोग

### तालिका-1

| भाषा | घर | कार्य स्थान | बाजार | धार्मिक क्रिया-कलाप | शिक्षा | अन्य स्थान | मीडिया | अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राजी | 75% | 25% | 5% | 84% | – | 30% | – | 60% |
| कुमाउँनी | 20% | 65% | 75% | 16% | 25% | 55% | 75% | 30% |
| हिन्दी | 5% | 10% | 20% | – | 75% | 15% | 25% | 10% |

उपर्युक्त तालिका इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि कई क्षेत्रों में राजी भाषा का प्रयोग बहुत कम हो गया है। साथ ही अन्य क्षेत्रों में धीरे-धीरे प्रयोग कम हो रहा है। यही नहीं इनके द्वारा व्यवहृत भाषा रूप शुद्ध भी नहीं है उसमें कुमाउँनी आगत तत्वों का बाहुल्य है।

### तालिका-2

| क्रम सं. | प्रश्न | हाँ | नहीं |
|---|---|---|---|
| 1 | क्या आपको अपनी मातृभाषा अच्छी लगती है? | 30% | 70% |
| 2 | विकल्प दिए जाने पर आप अपने बच्चे को किस भाषा में शिक्षा देना पसन्द करेंगे? (राजी या हिन्दी) | 100% हिन्दी या कुमाउँनी | |
| 3 | क्या आप भावी पीढ़ी को राजी बोलने के लिए उत्साहित करते हैं? | 40% | 60% |
| 4 | क्या आप समझते हैं कि आपकी भाषा अच्छी व उपयोगी है? | 20% अच्छी<br>10% उपयोगी | 80%<br>90% |
| 5 | क्या आपको अपनी संस्कृति व भाषा पर गर्व है? | ज्यादातर वक्ता इस प्रश्न के प्रति उदासीन थे। | |

भाषा एवं अस्मिता के मध्य गहरा सम्बन्ध मिलता है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति की उसकी भाषा तथा भाषा के अन्य प्रयोक्ताओं के प्रति अभिवृत्ति में होती है। इसलिए किसी मातृभाषाभाषी की अपनी भाषा के प्रति अभिवृत्ति उस भाषा के अस्तित्व एवं विकास दोनों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। एकत्रित सामग्री इस तथ्य की

सूचना देती है कि राजी समुदाय अपनी भाषा के प्रति हीन भावना से ग्रस्त है। वे अपनी भाषा को हेय दृष्टि से देखते हैं। उनके मन में यह पूर्वाग्रह घर कर गया है कि उनकी निम्न स्तरीय सामाजिक परिस्थिति एवं गरीबी का कारण उनकी भाषा है। उनका मानना है कि विकसित एवं समृद्ध भाषिक समुदाय उनकी भाषा तथा उनके रहन सहन को हीन समझते हैं चूंकि उन्हें अपनी भाषा पर गर्व नहीं है अतः वे दूसरों के सामने उसका प्रयोग करने में झिझकते हैं। अधिशासी समुदाय की अभिवृत्ति भी उनके प्रति प्रेरणापूर्ण नहीं है। ज्यादातर कुमाउँनी इसे निम्नस्तरीय, बेकार भाषा मानते हैं और 'जंगली' नाम देते हैं। वे प्रायः राजियों पर कुमाउँनी बोलने का दबाव भी डालते हैं। अपने शर्मीले स्वभाव तथा मिलनसार न होने के कारण राजी लोग अपने पड़ोसियों से बातचीत नहीं करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर हिन्दी या कुमाउँनी बोल कर वार्तालाप करते हैं। अस्कोट में मिले एक व्यक्ति ने, जो पिछले 40 वर्षों से राजी परिवार के पड़ोस में रह रहा है, बताया कि वे आज भी एक दूसरे के सामाजिक अवसरों (शादी, मृत्यु आदि) में शामिल नहीं होते हैं। स्पष्ट है कि दोनों भाषाओं के मध्य सम्पर्क की स्थिति कम होने पर भी यदि भाषा-लोप की स्थिति दृष्टिगत हो रही है तो निश्चय ही इसमें मनोवैज्ञानिक कारण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

स्पष्ट है कि समय के साथ क्रमशः घटने वाली जनसंख्या, प्रयोग क्षेत्र में होने वाला ह्रास, राजी समुदाय की अपनी भाषा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति, समृद्ध कुमाउँनी वर्ग का दबाव आदि कारणों से यह भाषा समृद्ध संस्कृति की भाषा में तेजी से समीकृत हो रही है। फ़लतः भाषा के शुद्ध रूप का प्रयोग क्षेत्र बहुत सीमित हो गया है। इन अभाषिक तत्वों के अतिरिक्त अनेक भाषिक तत्व भी इस प्रक्रम में कारक हैं, यथा- शिथलीकरण (relexification)। इसके अनेक उदाहरण राजी भाषा में दृष्टिगत होते हैं। ये लोग अपनी भाषा के शब्दों के स्थान पर कुमाउँनी के शब्दों का बहुत प्रयोग करते हैं। परिणामतः अनेक राजी अपनी ही भाषा के शब्द भूलते जा रहे हैं :

## तालिका-3

| हिन्दी | राजी | कुमाउँनी |
|---|---|---|
| चाचा | दुक्कइया | कक्का |
| माँ | या | इजा |

| | | |
|---|---|---|
| पीठ | बर्व्ई | पुट्टि |
| पिता | बा/बूबू | बाबू |

यही नहीं आधारिक शब्दावली के प्रयोग में भी कमी आ रही है और उसके स्थान पर आगत शब्दों का प्रयोग हो रहा है जिसे भाषा-लोप का स्पष्ट संकेतक माना गया है। एकत्रित की गई 276 कोशीय इकाइयों में से 119 भारतीय आर्य परिवार से सम्बन्ध रखती हैं। राजी भाषा में संख्यासूचक शब्द छह तक मिलते हैं। शेष सभी संख्या शब्द आगत हैं। इन प्रयोगों में कहीं-कहीं किञ्चिद् स्वन्यात्मक परिवर्तन दृष्टिगत होता है (जैसे-पन्द्रह)। यही नहीं सप्ताह के दिनों के नाम व वर्ष के महिनों के नाम भी आगत हैं। रंग सूचक शब्दों में दो शब्द लाल-टुल्हरिया; काला-टुकनहा~टोक्न्या मिलते हैं शेष आगत शब्दों का प्रयोग होता है। निम्न तालिका में शरीर के अंगों, पेड़-पौधे के नाम, रिश्ते नाते की शब्दावली आदि क्षेत्रों में आगत शब्दों का विवरण दिया गया है :

## तालिका-4

| विभिन्न वर्ग | कुल कोशीय मद | आगत कोशीय मद |
|---|---|---|
| खाद्यान्न | 32 | 30 |
| उपकरण | 17 | 12 |
| आभूषण | 5 | 2 |
| वस्त्र | 6 | 2 |
| शरीर के अंग | 36 | 12 |
| संख्या सूचक शब्द | 15 | 7 |
| जानवरों के नाम | 24 | 8 |
| रिश्ते नाते की शब्दावली | 28 | 12 |
| विशेषण और समुच्चय बोधक शब्द | 4 | 4 |

यह सर्वविदित तथ्य है कि आदान जहाँ एक ओर भाषा आधुनिकीकरण या विकास का सूचक है वहीं दूसरी ओर यदि आगत तत्व बड़ी संख्या में मूल भाषा तत्वों को विस्थापित करें तो यह भाषा-ह्रास का परिचायक बन जाएगा। दो भाषाओं के मध्य सम्पर्क की स्थिति में प्रायः कोशीय आदान के परिणामस्वरूप भाषा की स्वनप्रक्रियात्मक संरचना में भी बदलाव आता है जो क्रमशः भाषा की वाक्य संरचना को भी प्रभावित करता है। राजी भाषा में भी सम्पर्क के फलस्वरूप 'ण' स्वन आ गया है जो मूर्धन्य व्यंजन के पहले आने वाले समस्थानीय नासिक्य स्वन के स्थान पर प्रयुक्त मिलता है। इसके अतिरिक्त 'ड' स्वनिम के सहस्वनिम के रूप में 'ड़' का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है, उदाहरणार्थ- पहले ये लोग 'काड'- तोड़ना शब्द का उच्चारण करते थे (शर्मा डी. डी.) आज यही शब्द 'काड़' रूप में व्यवहृत मिलता है।

कोशीय स्तर पर राजी-कुमाउँनी तत्वों के मिश्रण से अनेक संकर शब्द निर्मित हुए हैं। संकरीकरण के लिए निम्नांकित रूपात्मक चिह्नको का प्रयोग मिलता है, यथा :

अङ् - हडङ् (हड्डी), फुलङ् (फूल), लङ् (लम्बा)।

रे - पकवा रे, कमा ओ रे।

व्याकरणिक स्तर पर जहाँ पारम्परिक राजी वक्ता कर्म+क्रिया+कर्ता अथवा कर्म+क्रिया पदक्रम का प्रयोग करता था वहाँ आजकल कर्ता+कर्म+क्रिया पदक्रम प्रचलित है। ध्यान रहे कि आज भी यह भाषा मौखिक रूप में स्थित है और इसका प्रयोग प्राइमरी शिक्षा के लिए भी नहीं हो रहा है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि व्यवहार क्षेत्र में क्रमिक ह्रास, अपनी भाषा के प्रति राजी वक्ताओं की नकारात्मक सोच व हीन प्रवृत्ति, स्थानीय लोगों का दबाव एवं उपरि वर्णित भाषिक कारक इस भाषा को धीरे-धीरे भाषा-लोप की दिशा में ढकेल रहे हैं। कई भाषाविद् ये तर्क देते हैं कि भाषाओं की समरूपता वह शक्ति है जो विश्वव्यापी समरसता और आर्थिक सुदृढ़ीकरण को बढ़ावा देती है तथापि संसार का इतिहास इस तथ्य को उद्‌घाटित करता है कि भाषिक समरूपता सांस्कृतिक विकास को कम करती है। प्रत्येक भाषा की अपनी सोच अपना संसार होता है और वह अपने समुदाय की संस्कृति की धरोहर होती है अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि

राजी जैसी लोप के कगार पर खड़ी भाषाओं को सुरक्षित व संरक्षित रखने का प्रयास किया जाए।

**टिप्पणी**

सन् 2000 में जब मैं अस्कोट में रहकर भाषिक सामग्री का संकलन कर रही थी उस समय मैंने लगभग सभी सूचकों से उनकी भाषा का नाम पूछा। किसी ने 'जंगली भाषा' और किसी ने अपनी जाति के नाम पर 'राजी' बताया। जाति और भाषा को अलग अलग नाम देने के उद्देश्य से मैंने उन्हें 'राउती' नाम सुझाया जो प्रायः सभी को स्वीकार्य था। कुछ समय 'राउती' का प्रयोग करने के बाद मुझे स्वयं 'राजी' नाम का प्रयोग ही अधिक उचित प्रतीत हुआ क्योंकि 'राउती' नाम कभी-कभी नेपाल की 'राउते' जाति के लिए प्रयोग किया जाता है।

* * *

# भाषा परिवृत्ति और अनुरक्षण
## जनजातीय भाषा 'राजी'

यह एक आम धारणा है कि बहुभाषाभाषी एवं सांस्कृतिक वैविध्य युक्त भारत देश में भाषाओं और बोलियों की अस्मिता और अस्तित्व सुरक्षित है किन्तु वास्तव में छोटे जनजातीय समुदायों की भाषा के सन्दर्भ में यह कथन सत्य नहीं कहा जा सकता है। आज बदलते सामाजिक, आर्थिक परिवेश एवं आव्रजन के कारण इन अल्पसंख्यक जनजातियों की पहचान धीरे-धीरे नष्ट हो रही है और वे अपनी संस्कृति, रीति-रिवाजों को त्याग समृद्धतर समुदाय के आचार-विचार, रहन-सहन और पहनावे को अपना रहे हैं। यही नहीं अनेक जनजातीय भाषाएँ समृद्ध संस्कृतियों की भाषा में आंशिक या पूर्ण रूप से समीकृत हो गई हैं जिसके फलस्वरूप इन जनजातियों ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर प्रान्तीय या राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग आरम्भ कर दिया है। साथ ही ऐसे उद्धरण भी मिलते हैं जहाँ सांस्कृतिक अस्तित्वगत भिन्नता तो विद्यमान है किन्तु भाषा परिवृत्ति के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। **भाषा परिवृत्ति** (language shift) का अर्थ है- 'किसी भाषा विशेष के प्रयोग क्षेत्र का संकुचन एवं उसके स्थान पर दूसरी भाषा का प्रयोग आरम्भ होना'। इसकी चरम स्थिति **भाषा विलुप्ति** (language death) को जन्म देती है अर्थात् 'जब किसी भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता हुआ सभी व्यवहार क्षेत्रों- घर-परिवार, बाजार, शिक्षा, धर्म, व्यवसाय आदि में समाप्त हो जाए।' जिन भाषिक समुदायों में एकाधिक भाषाएँ असमान रूप में प्रचलित होती हैं ऐसे अस्थिर, बहुभाषी समुदायों में भाषा-परिवृत्ति की संभावना अधिक रहती है। भाषाविदों द्वारा किये गये अनुसन्धानों के आधार पर भाषा परिवृत्ति के निम्नांकित कारक उभर कर आते हैं-

(i) प्रकार्यात्मक प्रेरणाएँ और भाषा परिवृत्ति का सामाजिक सहसम्बन्ध

(ii) भाषा परिवर्तन के रूप में भाषा परिवृत्ति

(iii) भाषा परिवृत्ति के मनोवैज्ञानिक आयाम

(iv) भाषा नीति और शिक्षा का भाषा परिवृत्ति पर प्रभाव।

इन सुसंगत एवं वैज्ञानिक अध्ययनों में भाषा परिवृत्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया- 'प्रकार्यात्मक दृष्टि से हीन एवं अपर्याप्त भाषिक कोड का प्रकार्यात्मक दृष्टि से पूर्ण एवं पर्याप्त भाषिक कोड द्वारा प्रतिस्थापन'। स्पष्ट है कि जब प्रकार्यात्मक दृष्टि से पूर्ण, उच्च एवं महत्त्वपूर्ण कोई भाषा/कोड ऐसी भाषा/कोड का स्थान ग्रहण कर ले जो अपने समस्त कार्य-व्यवहार नहीं कर सकती है तो इस प्रक्रिया को भाषा परिवृत्ति या भाषा विस्थापन कहते हैं। कभी-कभी रूपात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्तर पर आंशिक परिवृत्ति मिलती है, जैसे आज लगभग समस्त भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है और अंग्रेजी भाषा ने भारतीय भाषाओं के व्यवहार क्षेत्र के इस भाग को अधिकृत कर रखा है। भाषा परिवृत्ति की प्रक्रिया और समस्याओं को भलीभाँति समझने के लिए इसे **भाषा-अनुरक्षण** (language maintainence) के परिप्रेक्ष्य में देखना उचित होगा। जब कोई भाषिक समुदाय विभिन्न सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दबावों का सामना करता हुआ अपनी भाषा को सुरक्षित रखता है तो यह प्रक्रिया अनुरक्षण कहलाती है। स्थिर एवं बहुभाषी/एकभाषी समुदाय में प्रायः अनुरक्षण की स्थिति दृष्टिगत होती है। स्थिरता के लिए अपनी भाषा के प्रति भाषाभाषियों की सकारात्मक अभिवृत्ति/सोच का होना भी जरूरी है। सामान्यतः भाषिक समुदाय की अपनी भाषा के प्रति निष्ठा, भावात्मक लगाव, उसकी अस्मिता के प्रति सचेतता आदि तत्व भाषा अनुरक्षण में योगदान देते हैं। परिवृत्ति की भाँति अनुरक्षण भी आंशिक या पूर्ण हो सकता है, जैसे- आज संस्कृत भाषा का व्यवहार धार्मिक आचार व्यवहार और अनुष्ठानों तक सीमित है। कह सकते हैं कि आज अन्य क्षेत्रों से लुप्त होने पर भी धार्मिक क्रिया-कलापों के व्यवहार क्षेत्र में संस्कृत भाषा अनुरक्षित है।

विद्वानों का मानना है कि भारतवर्ष में भाषा अनुरक्षण आदर्श या मानक है और भाषा परिवृत्ति विकल्प जबकि विकसित देश अमरीका में इसके विपरीत स्थिति मिलती है। वहाँ अनेक अमरीकी जनजातियों की भाषाएँ अंग्रेजी की प्रभुता के आगे नष्ट हो गईं और उनका स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि स्वात्रंत्योत्तर लोकतान्त्रिक प्रवृत्तियों, आर्थिक सचलता और मीडिया से सम्पर्क के कारण एकान्त और दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले अनेक जनजातीय समुदाय,

धीरे-धीरे बाह्य जगत में रहने वाले गैर जनजातीय समुदायों से सम्पर्क बढ़ा रहे हैं जिसके फलस्वरूप उनकी जीवन शैली तथा सम्प्रेषण व्यवस्था प्रभावित हो रही है। इस प्रकार आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, आव्रजन, परसंस्कृतिग्रहण, पारम्परिक विश्वास एवं मान्यताओं का लोप के साथ-साथ धर्म परिवर्तन और व्यक्ति की सोच आदि भाषा परिवृत्ति के प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं।

प्रस्तुत लेख में कुमाऊँ क्षेत्र में बसी अल्पपरिचित, आदिम जनजाति 'राजी' की भाषा के सन्दर्भ में भाषा परिवृत्ति और भाषा अनुरक्षण की उपरि वर्णित प्रक्रियाओं के निष्कर्ष को आँकने का प्रयास किया गया है। सर जार्ज ग्रिर्यसन और डा. सुनीति कुमार चटर्जी राउती भाषा को तिब्बती-चीनी परिवार से सम्बन्धित मानते हैं जबकि डॉ. शोभा राम शर्मा और डॉ. डी.डी. शर्मा इसे ऑस्ट्रिक परिवार से जोड़ने का प्रयास करते हैं। मेरे विचार से यह तिब्बती-चीनी परिवार की बोली है जिसमें भारतीय आर्य भाषाओं (कुमाउँनी-हिन्दी) के आगत तत्वों का बाहुल्य है। यह जनजाति उत्तरांचल के पिथौरागढ़ एवं चम्पावत जनपदों में दो सौ किलोमीटर में फैली, नौ बस्तियों में निवास करती है। दुर्गम पहाड़ियों पर, सघन वनों के बीच स्थित इन बस्तियों तक पहुंचने के लिए कहीं-कहीं पाँच-छह किलोमीटर तो कहीं दस-ग्यारह किलोमीटर तक पैदल चलना पड़ता है। 1991 में हुई जनगणना के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या 356 थी जबकि 1981 के आँकड़े इनकी संख्या 1087 दर्शाते हैं। आज एक हजार तैंतालीस परिवारों में कुल राजियों की संख्या 667 है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इनकी शिक्षा दर बहुत कम है और सम्पूर्ण 'राजी' समुदाय का मात्र पाँच प्रतिशत जनसंख्या ही शिक्षित है और वह भी कक्षा पांच या छह तक और सिर्फ दो बच्चों ने आज तक दसवीं कक्षा की परीक्षा दी है। केवल 0.5 प्रतिशत राजी जनसंख्या सरकारी नौकरी में संलग्न है जबकि शेष लोग लकड़ी की कटाई, खेती, मछली मारना जैसे कार्यों द्वारा जीवकोपार्जन करते हैं। इनमें से कुछ ही अपनी पारम्परिक कला द्वारा लकड़ी के बर्तन बनाते हैं। 'सानन' और 'गेठी' नामक वृक्षों की लकड़ी से बने 'थेकी', 'पला' नाम वाले इन बर्तनों का प्रयोग प्राचीन कुमाउँनी परिवारों में दूध-दही रखने के लिए किया जाता था किन्तु आज इस कला के द्वारा पर्याप्त धनार्जन सम्भव न होने के कारण राजी लोगों ने जीविका के दूसरे साधन ढूंढ़ लिये हैं। इनके समाजार्थिक जीवन को करीब से देखने पर कहा जा सकता है कि इनकी भाषा में परिवर्तन होने का एक मुख्य कारण इनकी सामाजिक-आर्थिक दशा है जिसने इनकी भाषा को भी प्रभावित कर उसे नए साँचे में ढाला है।

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि आज भी 'राजी' भाषा का केवल मौखिक रूप ही मिलता है। पिछले साठ-सत्तर वर्षों से राजी का सम्पर्क आर्य परिवार की भाषा- कुमाउँनी, जो राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्धतर इनके पड़ोसियों की भाषा है; तथा हिन्दी- इस क्षेत्र में जिसका प्रयोग शिक्षा एवं राजकीय कार्यों में किया जा रहा है, से निरन्तर बना रहा है। पूर्व में हुए भाषावैज्ञानिक शोध इस तथ्य के संकेतक हैं कि जिन समुदायों में दूसरी भाषा के प्रवेश के पहले ही भाषा का लिखित रूप विकसित हो जाता है वहाँ भाषा परिवृत्ति की प्रक्रिया धीरे घटित होती है किन्तु जहाँ भाषा सिर्फ मौखिक रूप से विद्यमान होती है वहाँ यह प्रक्रिया तेजी से घटित होती है। सम्भवतः यही कारण है कि इस समुदाय में भाषा परिवृत्ति के स्पष्ट लक्षण मिलते हैं। राजी समुदाय द्वारा एकत्रित भाषिक सामग्री इस बिन्दु की ओर स्पष्ट संकेत करती है कि इन बस्तियों में रहने वाले कतिपय वृद्ध राजी आज भी एकभाषी (monolingual) हैं, विशेषतः वे जिनकी बस्तियाँ कुमाउँनी बस्तियों से बहुत दूर, दुर्गम स्थानों पर बसी हैं। वयस्क एवं किशोरावस्था वाले राजी प्रायः द्विभाषिक हैं और अनेक युवक-युवतियाँ अनजाने ही द्वितीय भाषा का प्रयोग करते हैं। एक रोचक तथ्य यह है कि सर्वेक्षण के दौरान अनेक त्रिभाषाभाषी भी मिले जो राजी-कुमाउँनी और हिन्दी बोलते हैं। यही नहीं कुछ शिक्षित वयस्क व बच्चे पढ़ना और लिखना भी जानते हैं। सम्प्रति इस भाषा के प्रयोग क्षेत्र पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि यह भाषा घर, परिवार के क्षेत्र में और धार्मिक क्रिया कलापों में प्रयुक्त हो रही है किन्तु राजी बस्तियों से बाहर कुमाउँनी गांवों, बाजार व खेत खलिहानों में ये लोग राजी का प्रयोग लगभग न के बराबर करते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम है और शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा है। निम्न तालिका राजी भाषा के व्यवहार क्षेत्र के वितरण पर प्रकाश डालती है :

## राजी का व्यवहार क्षेत्र

| भाषा | शिक्षा | धार्मिक क्रियाकलाप | घर-परिवार | अन्य स्थान |
|---|---|---|---|---|
| राजी | – | 84% | 75% | 30% |
| कुमाउँनी | 25% | 16% | 20% | 55% |
| हिन्दी | 75% | – | 5% | 15% |

निम्न समाजार्थिक परिस्थिति के कारण इस जाति का मीडिया से सम्पर्क नगण्य है। लगभग दस प्रतिशत राजी लोगों को रेडियो सुनने का अवसर मिलता है वह भी तब जब वे काम-धन्धे की तलाश में आसपास के गांवों में जाते हैं। मात्र तीन

प्रतिशत लोगों के पास अपना रेडियो है जिसका प्रयोग वे कुमाउँनी में प्रसारित प्रोग्राम सुनने के लिए करते हैं। दृश्य मीडिया से इनका सम्पर्क लगभग नहीं के बराबर है।

प्रायः द्विभाषिक स्थिति को भाषा परिवृत्ति का जनक माना जाता है। भाषाविदों ने द्विभाषिकता को विविध रूप में परिभाषित किया। वाइनरिख (1953) के मतानुसार दो भाषाओं के एकान्तरित प्रयोग अभ्यास को द्विभाषिकता कहते हैं। अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड के विचार से द्विभाषिकता का अर्थ दो भाषाओं पर मातृ भाषावत नियन्त्रण होना और उनका सतत मौखिक प्रयोग करना है। द्विभाषिकता की स्थिति में दोनों भाषाओं के शब्दों का मिश्रण हो जाना एक आम बात है क्योंकि दो भाषाओं में सम्पर्क की स्थिति सर्वप्रथम शब्दावली को ही प्रभावित करती है जिसके परिणामस्वरूप बाद में आदान और धीरे धीरे अभिसरण तथा परिवृत्ति घटित होती है। विकास की यह यात्रा राजी भाषा में भी देखी जा सकती है। इसके ज्यादातर वक्ता बातचीत में अनेक कुमाउँनी शब्दों का प्रयोग करते हैं। यही नहीं वार्तालाप के दौरान बीच-बीच में कुमाउँनी में पूरा वाक्य भी बोलते हैं, उदाहरणार्थ :

1. शीङ् मा खुवा झड़ए-इ-रे — पेड़ से पत्ते गिर रहे हैं।
2. टिक्वा ब्याओ कल्लि ह्ओं। — टीका सिंह की शादी कल है।
3. झिक्कल ब्यार चल्लि-इ-रे। — तेज हवा बह रही है।
4. पंगा किलो दाल तोलियो। — पाँच किलो दाल तौलो।

सर्वेक्षण के दौरान मुझे कई अंग्रेजी शब्द भी सुनाई पड़े, जैसे- **top, watch, local, tape** आदि। इनके प्रयोग में वक्ता बड़े गर्व का अनुभव कर रहा था। वाइनरिख द्वारा वर्णित 'व्याघात' **(interference)** के विविध रूपों से मेरी अध्ययन सामग्री में कोशीय, सांस्कृतिक और व्याकरणिक व्याघात के अधिक नमूने मिले। दैनिक प्रयोग की वस्तुओं, कपड़ों, फल, सब्जी, जानवरों, औजार तथा कुछ धार्मिक क्रियाओं को ये जनजाति लोग प्रायः कुमाउँनी नाम से अभिहित करते हैं। यहाँ एक मनोवैज्ञानिक तथ्य यह विचारणीय है कि ऐसा करने में राजी लोग झिझकते भी नहीं हैं वरन् बड़ी सरलता व सुगमता से राजी में वार्तालाप के दौरान कुमाउँनी/हिन्दी शब्दों का प्रयोग करते हैं। यह देखा गया कि दोनों भाषाओं की सामग्री अलग-अलग करने का निर्देश दिए जाने पर राजी भाषाभाषी को समस्या हुई। अतः कह सकते हैं कि अपनी मातृभाषा की शुद्धता, उसके मूल स्वरूप की सुरक्षा के प्रति राजी लोग बिल्कुल सजग नहीं हैं। मातृ भाषा के प्रति उनकी अभिवृत्ति जानने के उद्देश्य से उनसे एक

प्रश्नावली पूछकर भरी गई। जिसमें व्यक्तिगत जानकारी के अतिरिक्त तीन प्रमुख प्रश्न थे- (i) क्या तुम राजी बोलना पसन्द करते हो? (ii) क्या राजी भाषा का प्रयोग करना अच्छा समझते हो? (iii) क्या तुम्हें अपनी भाषा व संस्कृति पर गर्व है?

**तालिका-1**

**क्या तुम राजी बोलना पसन्द करते हो?**

| आयु | हाँ | उदासीन | नहीं |
|---|---|---|---|
| 5-15 | 20 | 60 | 20 |
| 16-25 | 30 | 10 | 60 |
| 26-35 | 25 | 10 | 65 |
| 36-45 | 40 | 05 | 55 |
| 46-55 | 55 | 05 | 40 |
| 56-65 | 90 | 05 | 05 |
| 66+ | - | - | - |

**तालिका-2**

**क्या राजी भाषा का प्रयोग करना अच्छा समझते हो?**

| आयु | हाँ | उदासीन | नहीं |
|---|---|---|---|
| 5-15 | 05 | 90 | 05 |
| 16-25 | 10 | 10 | 80 |
| 26-35 | 15 | 05 | 80 |
| 36-45 | 25 | 05 | 70 |
| 46-55 | 50 | 05 | 45 |
| 56-65 | 85 | 05 | 10 |
| 66+ | - | - | - |

## तालिका-3

### क्या तुम्हें अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व है?

| आयु | हाँ | उदासीन | नहीं |
|---|---|---|---|
| 5-15 | - | 100 | - |
| 16-25 | 15 | 50 | 35 |
| 26-35 | 25 | 35 | 40 |
| 36-45 | 35 | 35 | 30 |
| 46-55 | 45 | 30 | 25 |
| 56-65 | 55 | 30 | 15 |
| 66+ | - | - | - |

प्रायः 16 से 25 वर्ष की आयु वर्ग वाले युवा सूचक अपनी मातृभाषा के प्रति उदासीन थे और राजी की तुलना में कुमाउँनी/हिन्दी को पसन्द करते हैं क्यों कि ये भाषाएँ उन्हें बाह्य दुनिया से जोड़ती हैं इनकी सहायता से आसपास के जगत से उनका सम्पर्क बना रहता है। 26 से 45 वर्ष की आयु वाले सूचकों का रुझान भी इन्हीं भाषाओं की ओर दिखा। किन्तु उनके झुकाव का कारण भिन्न था, वे इन्हें इसलिए बोलना पसन्द करते हैं क्योंकि इन्हीं भाषाओं की सहायता से उन्हें रोजी-रोटी मिलती है। यद्यपि राजी वयस्क अपने बच्चों से राजी में ही बातचीत करते हैं तथापि व्यवहारिकता की दृष्टि से वे उन्हें कुमाउँनी सिखाना चाहते हैं। 35 वर्ष से कम आयु के अनेक सूचक, जो भावी पीढ़ी के निर्माता कहे जा सकते हैं, वे भी इस बात के विरोधी हैं कि उनके बच्चे 'राजी' बोले। ध्यातव्य है कि विरोध करने वालों में स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। पूर्व में हुए शोध भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्रायः स्त्रियाँ निम्नस्तरीय भाषा को कम पसन्द करती हैं तथा समाजार्थिक कारणों एवं सत्तात्मक संरचना के कारण वे उच्च वर्ग की भाषा को अधिक पसन्द करती हैं। यह भी देखा गया कि अनेक वक्ताओं में अपनी भाषा के प्रति हीन भावना भी घर कर गई है। दूसरे समुदाय की नजर में ऊँचा उठने एवं सामाजिक स्वीकृति पाने के लिए राजी जानने पर भी कई राजी लोग अपनी भाषा की नाते-रिश्ते की शब्दावली, व्यक्तियों के नाम, गणनावाची शब्द आदि के स्थान पर कुमाउँनी का प्रयोग करते हुए अच्छा महसूस

करते हैं। अतः भाषा में कोड परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रायः सभी भाषिक समुदायों में कोड परिवर्तन का व्यवस्थित स्वरूप मिलता है जिसके अपने निश्चित और विशिष्ट नियम होते हैं। राजी भाषा में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें संज्ञा पदबंध में कोड परिवर्तन किया गया :

1. टुल्हरिया मुर्गी थाउ के। लाल मुर्गा भाग गया।
2. ना/नङ् भैशि शीय। मेरी भैसि मर गई।

निम्नांकित उदाहरणों में क्रिया पदबंध में घटित कोड परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है :

1. नाव बन्नउआ। घर बनाओ।
2. नङ् दई जमा इ रे। मैंने दही जमा दिया है।

कई ऐसे उदाहरण मिले जिनमें संज्ञा पदबंध का शीर्ष कुमाउँनी या हिन्दी में है :

1. शराबाय बोतल। शराब की बोतल।
2. खुशबूदार फुलङ् । खुशबू वाले फूल।

ऐसे भी नमूने प्राप्त हुए जहाँ सारा का सारा संज्ञा पदबंध 'राजी' में ही बोला गया :

1. टुकनहा बक्का। काली बकरी।
2. नी पयाल। दो लड़के।

संज्ञा पदबंध और क्रिया पदबंध के अतिरिक्त अन्तर उपवाक्यीय परिवर्तन के भी कई उदाहरण मिले :

1. ना नङ् नाव बी रे लेकिन आज टेम कोई नहीं।
   मैं तुम्हारे घर जाता लेकिन आज टाइम नहीं है।

कोशीय स्तर पर राजी और कुमाउँनी तत्वों के मिश्रण द्वारा बने अनेक संकर शब्द (**hybrid word**) मिलते हैं। राजी भाषा में संकरण के कुछ चिह्नक बहुत

प्रयोग में आते हैं, जैसे :

ङ् - दुधङ् , पलङ् , कठङ् , अबङ् आदि।

रे - कमाओरे, लग्वारे, झड़ेइरे आदि।

ऊपर हुई चर्चा से स्पष्ट है कि इस जनजातीय समुदाय की जनसंख्या दर में दिन प्रति दिन होने वाली गिरावट, भाषा के व्यवहार क्षेत्र का संकुचन, भाषा के रूपात्मक स्वरूप में होने वाला व्याघात आदि कारक इस तथ्य के संकेतक हैं कि यह जनजातीय भाषा शीघ्रता से उच्च वर्ग की भाषा में समीकृत हो रही है। परिणामतः भाषा के मूल स्वरूप का प्रयोग धीरे-धीरे कम हो रहा है। सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित सामग्री इस तथ्य की परिचायक है कि राजी भाषा की परिवर्तन की दिशा भाषा परिवृत्ति की ओर है क्योंकि भाषा प्रयोग की अभिरचना संरचनात्मक परिवर्तन की अभिरचना के अनुरूप है। फिर भी कुछ प्रयोग क्षेत्रों जैसे- घर-परिवार, धार्मिक क्रिया-कलाप में राउती की सत्ता बनी हुई है किन्तु कितने समय तक यह परिवर्तन की लहरों का वेग, आर्थिक, शैक्षिक दृष्टि से समृद्धतर पड़ोसियों का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक दबाव सह पाएगी इस विषय पर कुछ कह पाना कठिन है। अतः इससे पहले कि यह जनजातीय भाषा इतिहास का एक पृष्ठ मात्र बन कर जाए इसे लिखित रूप प्रदान कर संरक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।

* * *

# जनजातीय शिक्षा में मातृ भाषा की भूमिका

शिक्षा प्रकाश की उस किरण की भाँति है जो अन्धकार रूपी अज्ञानता को दूर कर मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में सहायक होती है। ईर्ष्या, द्वेष, अहम् आदि भावों को समाप्त कर आत्मा को स्वच्छ निर्मल बनाती है तथा मानव की सोच का विस्तार कर उसे आसपास के वातावरण से सामजस्य स्थापित करने की प्रेरणा देती है। बच्चे के सामाजीकरण में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। यही नहीं शिक्षा समाज के अंग के रूप में मानवीय संसाधन के विकास में सहायता देती है और व्यक्ति के समाजार्थी विकास में एक कारक का कार्य करती है। शिक्षा का संबंध सीखने/शिक्षण से है जिसका अर्थ है- अध्ययन, निर्देश पालन एवं अनुभव के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना। इसे अनौपचारिक शिक्षा भी कह सकते हैं। औपचारिक शिक्षा से तात्पर्य 'विद्यालय जाकर ज्ञानार्जन से' लिया जाता है। जहाँ एक व्यवस्थित पद्धति के माध्यम से व्यक्ति के ज्ञान, कार्यक्षमता, कुशलता, व्यक्तित्व, चरित्र और मस्तिष्क क्षमता को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा चाहे औपचारिक हो या फिर अनौपचारिक दोनों में ही भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा समाज के सदस्य परस्पर सहयोग, अन्तःक्रिया और ज्ञानार्जन करते हैं। इसी माध्यम द्वारा हम जागतिक वास्तविकताओं का साक्षात्कार कर उनका नामांकन करते हैं। यही नहीं भाषा ही व्यक्ति का उसकी संस्कृति से प्रथम परिचय कराती है और उसे एक अस्मिता प्रदान करती है।

हमारा देश अत्यन्त प्राचीन काल से एक बहुभाषी एवं बहुसांस्कृतिक देश रहा है और आज भी उसका वही स्वरूप विद्यमान है। भारतीय आदिवासी इस बहुरंगी जगत के अभिन्न अंग हैं। यद्यपि हमारे संविधान में आदिवासियों के आर्थी, शैक्षिक अधिकारों की सुरक्षा के नियम निर्धारित हैं तथापि वर्तमान में उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। प्रस्तुत लेख में भारतीय जनजातियों की शिक्षा व साक्षरता

स्तर पर विचार करते हुए उत्तरांचल राज्य के पिथौरागढ़ जिले में रहने वाली 'राजी' जनजाति की भाषा एवं उनकी शैक्षिक परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा।

## 'राजी' जनजाति का परिचय

राजी एक आदिम जनजाति है जो उत्तरांचल के सघन वनों में बसी छोटी-छोटी नौ बस्तियों- किमखोला, चिपलतरा, भोकतिरवा, गनागाँव, कन्तोली, अलतड़ी, जमतड़ी, कूट मदनपुरी चौरानी, में रहते हैं। ये बस्तियाँ दुर्गम पर्वत श्रंखलाओं पर दो सौ किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में फैली हैं। इन गांवों तक पहुंचने के लिए कहीं पाँच-छह तो कहीं-कहीं दस-ग्यारह किलोमीटर तक पर्वतीय पगडन्डियों पर चलना पड़ता है। बाह्य जगत से इस जनजाति का परिचय 1823 में, तत्कालीन कुमाऊँ के कमिश्नर सी.डब्लू ट्रेल ने कराया। विद्वानों का मानना है कि राजी (वनरावत) प्रागैतिहासिक किरातों के वंशज हैं जो इस क्षेत्र में नाग एवं खस जातियों से पहले आकर बसे थे। सम्प्रति ये स्वयं को अस्कोट राजपरिवार से सम्बन्धित बताते हैं। बाह्य मुखाकृति में आज ये मिश्रित शारीरिक लक्षणों वाले हैं। मुखमुद्रा और त्वचा-वर्ण की दृष्टि से इन्हें आर्य, द्रविड़ एवं मंगोल प्रजातियों का मिश्र रूप कहा जा सकता है। दीर्घकाल से हो रहे सन्लयन के कारण इनके मूल जातिगत अभिलक्षण लुप्त हो चुके हैं। आज इनकी कुल जनसंख्या 667 मानी जाती है जो इनकी घुमन्तु प्रकृति के कारण घटती-बढ़ती रहती है। इनकी भाषा के विषय में आज भी बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। 1982 में प्रकाशित हाले की पुस्तक में इसे मगर, चेपंग आदि भाषाओं के साथ रखा गया। मैटिसॉफ इसे चीनी-तिब्बती परिवार की बोडिक शाखा के मध्य पश्चिमी हिमालयी वर्ग से सम्बन्धित मानते हैं। इसके वर्तमान स्वरूप में हिन्दी व कुमाउँनी के आगत तत्वों का बाहुल्य है।

## जनजातीय शिक्षा क्षेत्र में किए गए कार्य

पिछले छह-सात दशकों में भारत सरकार ने जनजातीय शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक योजनाएं बनाई। केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने अनेक ऐसे कार्यक्रम चलाए जो प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक के लिए आर्थिक सहायता एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान करते हैं। इनमें से प्रमुख कार्यक्रम निम्नांकित हैं :

* स्कूल ड्रेस का निःशुल्क वितरण,
* विद्यार्थियों को दोपहर का भोजन निःशुल्क उपलब्ध करवाना,

* पुस्तक, कॉपी, पेन्सिल आदि अध्ययन सामग्री का निःशुल्क वितरण। यही नहीं माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा सम्बन्धी अनेक सुविधाएँ जैसे- हॉस्टल व्यवस्था।

* तकनीकी एवं अन्य संस्थानों में आरक्षण आदि भी इन कार्यक्रमों के ही अंग हैं। यहाँ यह जानकारी देनी भी उचित होगी कि सातवें प्लान में सरकार ने इन विभिन्न योजनाओं के माध्यम से 'राजी' आदिवासियों के विकास के लिए 35.99 करोड़ रुपए व्यय किए। किन्तु क्षेत्रीय कार्य के समय सामने आई वास्तविकता का ज्ञान एक विपरीत तस्वीर पेश करता है। इन योजनाओं के तहत सरकार द्वारा बनाए गए विद्यालयों में आज सिर्फ एक-दो की दशा सही है। शेष में कहीं भवन एवं फर्नीचर उपलब्ध नहीं हैं तो कहीं शिक्षकों की अध्यापन कार्य में रुचि नहीं है। जौलजीबी में स्थित श्री हीरा सिंह बोरा द्वारा संचालित 'राजी आवासीय विद्यालय' सरकार की उदासीनता का शिकार है। 60 विद्यार्थियों की संख्या वाले इस विद्यालय में छात्रों की संख्या कम ज्यादा होती रहती है। घुमन्तु प्रवृत्ति वाले ये बच्चे सुविधाएं उपलब्ध करवाने पर भी बड़ी कठिनाई से विद्यालय में निवास करते हैं और कुछ दिनों के पश्चात गाँव भाग जाते हैं। स्कूल के कर्मठ शिक्षक बच्चों को बुलाने एवं उनके माता-पिता को समझाने इनके दुर्गम गांवों तक भी जाते हैं। किन्तु सरकार की उदासीनता के चलते उन्हें भी समय पर वेतन नहीं मिलता है। कुल मिलाकर इन प्रतिकूल परिस्थितियों का बुरा प्रभाव राजी शिक्षा योजना पर पड़ रहा है। परिणामस्वरूप राजी जाति का साक्षरता प्रतिशत अत्यन्त कम है और सम्पूर्ण जनसंख्या का मात्र पाँच प्रतिशत ही शिक्षित है वह भी कक्षा चार अथवा पाँच तक। सम्पूर्ण सम्प्रदाय के केवल तीन-चार बच्चों ने दसवीं की परीक्षा दी है। सरकारी दफ्तरों में वर्ग चार पद पर पांच राजी कार्यरत हैं। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण जनसंख्या का 0.5% ही सरकारी नौकरी में है। सर्वेक्षण के दौरान उनकी शिक्षा को प्रभावित करने वाले निम्नांकित कारण ज्ञात हुए :

1. सरकार द्वारा निर्मित विद्यालय इनकी बस्तियों से दूर कुमाउँनी गांवों के पास हैं। जहाँ गैर जनजातीय बच्चों की संख्या अधिक है। प्रायः जनजातीय बच्चों के लिए ऐसे स्कूलों के वातावरण में समायोजन स्थापित करना कठिन होता है जहाँ उनकी संस्कृति, धर्म, जाति और भाषा को नकारा जाए।

2. इन विद्यालयों में ज्यादातर गैर प्रशिक्षित अध्यापक कार्यरत हैं। जो

इनकी संस्कृति, भाषा का असम्मान कर स्वयं भी उससे घृणा करते हैं और बच्चों को यह एहसास दिलाते हैं कि वे हीन और कमजोर हैं।

3. इन सभी विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। जो आदिवासियों के लिए एक विदेशी भाषा जैसी है।

इन मनोवैज्ञानिक कारणों के अतिरिक्त कतिपय आर्थिक दबाव के कारण भी ये पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। अध्ययन के दौरान इनकी शैक्षिक स्थिति का सही आकलन करने के लिए राजी लोगों से पूछ कर निम्न प्रश्नावली भरी गई। जो उनकी वर्तमान शिक्षा-स्थिति की परिचायक है :

## तालिका-1

| | हाँ | नहीं |
|---|---|---|
| 1. क्या आपके गाँव में प्राइमरी शिक्षा की उचित व्यवस्था है? | 09 | 91 |
| 2. क्या आप अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं? | 94 | 06 |
| 3. क्या आप चाहते हैं कि आपके बच्चे पढ़-लिख कर नौकरी करें? | 91 | 09 |
| 4. क्या आप निम्न भाषाएँ जानते हैं? | | |
| (अ) राजी (आ) कुमाउँनी (इ) हिन्दी | | |
| 5. क्या आपको पैसे की तंगी रहती है? | 97 | 03 |
| 6. आप अपने परिवार की आय से संतुष्ट हैं? | 18 | 82 |

निम्नांकित तालिका उनके भाषिक व्यवहार का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करती है-

## राजी भाषा का क्षेत्रवत प्रयोग

| भाषा | शिक्षा | धर्म | घर | अन्य |
|---|---|---|---|---|
| राजी | – | 84% | 75% | 30% |
| कुमाउँनी | 25% | 16% | 20% | 55% |
| हिन्दी | 75% | – | 5% | 15% |

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षा में इस भाषा का व्यवहार लेशमात्र नहीं होता है और यह बात इनके शैक्षिक व्यवहार में नकारात्मक भूमिका निभा रही है। समय-समय पर हुए शोध कार्यों के आधार पर आज यह निर्धारित हो चुका है कि साक्षरता के प्रसार में मातृ भाषा की अहम भूमिका होती है। सक्सेना जी ने अपने कार्य में कहा, "the language variety closest to the learner is the ideal medium for imparting literacy skills...." भाषाविद् ओ.एन. कौल भी शिक्षा माध्यम के लिए मातृभाषा की महत्ता स्वीकारते हुए कहते हैं "it is axiomatic that the best medium for teaching a child is his mother tongue. Psychologically, it is the system of meaningful signs that in his mind works automatically for expression and understanding. Sociologically it is means of identification among the members of community to which he belongs. Educationally he learns more quickly through it than through an unfamiliar linguistic medium."

अतः कह सकते हैं कि राजी जनजाति का शैक्षिक विकास बहुत कम एवं निम्न स्तर का है और यदि उनकी स्थिति में सुधार करना है तो निम्नांकित सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है :

1. इस बात का ध्यान रखा जाए कि प्राइमरी अध्ययन अध्यापन मातृभाषा में हो। इस कार्य के लिए भाषाविदों को आगे आकर शैक्षणिक सामग्री का निर्माण करना होगा। राजी भाषा अभी सिर्फ मौखिक रूप में प्रचलित है उसको स्थायित्व व संरक्षण प्रदान करने के लिए उसे लिखित रूप दिया जा सकता है। जिसके लिए देवनागरी लिपि की सहायता ली जा सकती है।
2. समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि राजी जाति के समुदाय के युवा वर्ग को विद्यालयों में पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित किया जाए। इससे न केवल युवा वर्ग को उचित दिशा मिलेगी वरन् बच्चों को भी लाभ पहुंचेगा। परिचित चेहरे और अपनी मातृभाषा बच्चों को पढ़ाई के लिए प्रेरित करेगी।
3. प्रायः कहा जाता है कि हम भारतीय कुशल योजना निर्माता होते हैं किन्तु कार्यान्वयन में पिछड़ जाते हैं। जनजातीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो

स्पष्ट होता है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने आदिवासियों के शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के लिए अनेक हितकर योजनाएँ बनाई किन्तु इनके अपूर्ण व गलत क्रियान्वयन के कारण इनका लाभ आदिवासियों को नहीं पहुंचा। अतः इनमें से आज अनेक योजनाओं को समाप्त करने का समय आ गया है।

अन्त में मैं यह कहना चाहूंगी कि भारत का भाषिक परिदृश्य अत्यन्त विस्तृत एवं जटिल है। आज यहाँ भाषा के साथ सत्ता एवं वर्चस्व का सम्बन्ध जुड़ने से सबसे ज्यादा हानि आदिवासी जनजातियों को हुई है। फिर भी इस जटिल समस्या पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है विशेष रूप से शिक्षा सम्बन्धी भाषा नीति पर। त्रिभाषा नीति आज समान रूप से लागू नहीं हो पाई है।

छत्तीसगढ़, झारखण्ड जैसे आदिवासी बहुल राज्यों में भी मातृ भाषा का शासन, प्रशासन, शिक्षा, साहित्य में कोई विशेष स्थान नहीं है। अतः आज आवश्यकता है न केवल सबल और अच्छी भाषा नीति की वरन् उसके सही क्रियान्वयन की। मातृ भाषा के माध्यम से प्राइमरी शिक्षा प्रदान किए जाने पर भारतीय शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा और अन्य भाषाएँ असुरक्षा, खतरे का भाव न महसूस कर प्रतिद्वन्दी की नहीं वरन् पूरक की भूमिका निभाएँगी।

***

# दो मध्य-पश्चिमी हिमालयी बोलियों में प्राप्त सांस्कृतिक एवं भाषिक समानताएँ

## ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रस्तुत लेख इस सम्भावना पर प्रकाश डालता है कि राजी और खामची दो घनिष्ठतः सम्बन्धित बोलियाँ/भाषाएँ हैं जो आस पास बोली जा रही अन्य समृद्ध भाषिक शक्तियों के कारण भाषिक समीकरण का बहुत अधिक दबाव महसूस कर रही हैं। भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन उनके मध्य प्राप्त वंशानुक्रमिक सम्बन्धों के ज्ञान में सहायक होता है। इस कार्य हेतु भाषाओं के उन सभी पक्षों की तुलना की जाती है जहाँ परिवर्तन की सम्भावना कम होती है। यह प्रमाणिक तथ्य है कि कोई भी भाषा सम्पर्क की स्थिति में अप्रभावित नहीं रहती है। विशेष कर जब उसका पड़ोसी समाज राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से समृद्धतर भाषा का प्रयोग करता हो। किसी भाषा की शब्द सम्पदा परिवर्तन की इस धारा से सर्वाधिक प्रभावित होती है। विशेषकर वे शब्द जिनता वक्ता के सांस्कृतिक अनुभव क्षेत्र में कोई सह सम्बन्धित शब्द नहीं मिलता है, जैसे- आखेटक-संग्राहक समुदायों के लिए घर, खेत, हल, गाय आदि शब्द महत्त्वहीन हैं या जैसे भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्मों से सम्बन्धित शब्दों से ही परिचित होते हैं। जब किसी भाषिक समुदाय में संस्कृति से सम्बद्ध शब्दों का आदान-प्रदान होता है तो ऐतिहासिक सम्बन्ध को ज्ञात करने हेतु होने वाले तुलनात्मक अध्ययन के पूर्व इन शब्दों को अलग कर दिया जाता है। भाषाविद् ग्रीनबर्ग (1963 : 39) के मतानुसार, ``the presence of fundamental vocabulary resemblances, and resemblances in items with grammatical function, particularly if recurrent through a number of languages, is a sure indication of genetic relationship." यही

कारण है कि भाषा परिवारों के वंशानुक्रमिक सम्बन्धों को ज्ञात करने के लिए भाषाविद् शब्दावली स्तर से तुलनात्मक विश्लेषण आरम्भ करते हैं।

शोध के दौरान हमने देखा कि राजी और खामची भाषाओं के सम्बन्ध को समझने में शब्द समूह सम्बन्धी इस तुलना ने हमारी सहायता की। तुलना के आधार रूप में हमने Swadesh-100 शब्द सूची को चुना जिसमें भिन्न-भिन्न आर्थी क्षेत्रों, यथा- संख्यासूचक, सर्वनाम, शरीर के अंग, रंगनाम तथा साधारण मानवीय क्रिया सूचक शब्द समाहित हैं।

## वन के राजा

राजी और राउते जनजातियों के विषय में आरम्भिक सूचना ईसा पश्चात सन् 1800 के लगभग प्राप्त हुई। ये समूह कुमाऊँ तथा नेपाल के क्षेत्रों में आखेटक-संग्राहक जाति के रूप में विचरण करते थे। डॉ. फोर्टिर ने जिस राउते समूह का अध्ययन किया उसकी जनसंख्या 150 है जिसमें कई पीढ़ियों से कोई परिवर्तन नहीं आया है (फोर्टिर : 2000; रेनहार्ड 1974)। इसके अतिरिक्त अन्य राउते समुदाय पश्चिमी नेपाल क्षेत्र में भी मिलते हैं। पिथौरागढ़ के आस पास के क्षेत्रों में नौ छोटी-छोटी बस्तियों में रहने वाले राजियों की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 356 थी जबकि सन् 2001 में प्रो. देवसिंह पोखरिया द्वारा किए गए सर्वे में 667 लोगों का उल्लेख मिलता है। अनुमान है कि नेपाल में घुमन्तू, आंशिक घुमन्तू एवं स्थिर रहने वाले राउते जनसंख्या में 1200-1500 हैं तथा उत्तराँचल के पिथौरागढ़, जौलजीबी, अस्कोट क्षेत्रों में इनकी कुल संख्या 300-667 के मध्य है। जनसंख्या सम्बन्धी इस उतार-चढ़ाव का कारण इनकी घुमन्तू प्रवृत्ति भी हो सकती है क्यों कि ये एक स्थान पर स्थिर रहना पसन्द नहीं करते हैं। अतः इनकी जनगणना में समस्या आती है। राउते समुदाय ने तो नेपाल में प्रचलित नागरिक परिचय पत्र के लिए अपना पंजीकरण भी नहीं करवाया है।

ये दोनों जनजातीय समूह सघन वनों में विचरण एवं निवास करते हैं अतः इनके पड़ोसी आर्य भाषा भाषी नेपाली और कुमाउँनी इन्हें बनमानुस, वनमन्छे, वन के राजा आदि नामों से पुकारते हैं। इन बाह्य नामों (exonyms) के अतिरिक्त नेपाल में ये स्वयं को 'राउते' तथा भारत में 'राजी' कहलाना पसन्द करते हैं। 'राउते' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भाषाविद् रास चौघले का मत है कि इसका निर्माण 'रावत+ए' से हुआ है। विलियम क्रुक के मतानुसार उत्तर भारत में 'रावत' का अर्थ था-

'राजदूत' अर्थात् 'राजा का दूत'। सम्मानजनक शब्द होने के कारण इस शब्द का प्रयोग विभिन्न वर्गों के नामकरण के लिए किया गया। संस्कृत 'राजेण पुत्रः' से विकसित मानने पर इसका अर्थ होगा 'राजा का पुत्र' या 'योद्धा'। भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में 'राउत' शब्द पुजारियों के एक उपवर्ग के लिए भी प्रचलित है। स्पष्ट है कि राजी तथा राउते शब्द चाहे 'राजकुमार' से विकसित हुए हों या 'राजदूत' से ये सभी बाह्य लोगों द्वारा दिए गए नाम हैं जिनका प्रयोग विविध समूहों के लिए किया जाता रहा है।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इनकी भाषाओं राजी तथा खामची के विषय में आज भी बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। 1982 में प्रकाशित हाले की पुस्तक में इन भाषाओं को वायु, मगर, चेपंग, कुसन्दा तथा खाम-मगर भाषाओं के साथ रखा गया। पर्याप्त सामग्री के अभाव की बात स्वीकारते हुए ग्रियर्सन एवं डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी राजी को तिब्बती-बर्मी परिवार की हिमालयवर्ती सर्वनामीय बोलियों के साथ रखने के पक्षधर थे। डॉ. शोभाराम शर्मा तथा डॉ. डी.डी. शर्मा राजी को मुण्डा बोलियों के प्रागभाषिक अवशेष मानते हैं। हमारे द्वारा एकत्रित सामग्री में यद्यति कुछ आस्ट्रो ऐशियाटिक तत्वों की सत्ता अवश्य है किन्तु मात्र उनके आधार पर किसी प्रकार के वंशानुक्रमिक सम्बन्ध की स्थापना नहीं की जा सकती। रस्तोगी (2002 : 159) द्वारा किए गए अध्ययन इस बात के स्पष्ट संकेतक हैं कि राजी तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषा है जिसमें आर्य परिवार के आगत तत्वों का बाहुल्य है।

## सांस्कृतिक समानताएँ

इन दोनों जनजातियों पर हुए मानवशास्त्रीय कार्य इस बात की जानकारी देते हैं कि इन दोनों के मध्य अनेक समान सांस्कृतिक अभिलक्षण मिलते हैं। यही नहीं ये लोग नेपाल के तिब्बती-बर्मी समूहों 'चेपंग' और 'व्याङ्शी' तथा आस्ट्रो एशियाटिक चरवाहा समूह 'बरहोर' से भी सांस्कृतिक समरूपता रखते हैं। इन दोनों जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय पृष्ठभूमि के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्राप्त समानताएँ निम्नलिखित हैं :

1. ऐतिहासिक तथ्य इस बिन्दु पर प्रकाश डालते हैं कि ये दोनों ही जनजातीय समूह वन में निवास करने वाले यायावर (खानाबदोश) थे। राउते यद्यपि आज भी उसी जीवन शैली का अनुसरण कर रहे हैं तथापि राजी परिवारों ने सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किए

गए प्रयास; वन संरक्षण नियम आदि बाह्य दबावों के कारण स्थिर या अर्ध घुमन्तू जीवन शैली अपना तो ली है किन्तु उनकी मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई है।

2. आरम्भ में शिकार ही इनका मुख्य व्यवसाय था तथा दोनों समूह सघन वनों में कुल्हाड़ी एवं जाल फैलाकर आखेट करते थे। राउते समुदाय में शिकार के अन्य प्रभावशाली तरीकों का प्रयोग भी किया जाता था। राजी जाति में स्याही के शिकार की परम्परा आज भी विद्यमान है।

3. ये दोनों ही जातियाँ स्वयं को राजवंश से सम्बन्धित उच्च वर्ग का मानती हैं। जहाँ राउते अपना सम्बन्ध नेपाल के 'ठाकुरी वर्ग' से बताते हैं वहाँ राजी अस्कोट के राजा का वंशज होने का दावा करते हैं।

4. जंगल से लकड़ी काटकर कटोरे, प्याले, डिब्बे आदि बनाने की प्रथा दोनों समुदायों में मिलती है। राउते आज भी इनका प्रयोग वस्तु-विनिमय प्रणाली द्वारा चावल, गेहूं, तम्बाखू आदि खरीदने के लिए करते हैं। राजी समूह में यह पारम्परिक कला समाप्त हो गई है। इसका मुख्य कारण इन बर्तनों के निर्माण में काम आने वाली लकड़ी का अभाव कहा जा सकता है। लकड़ी की कटाई पर भारत सरकार के नियन्त्रण के कारण बर्तन बनाने वाली लकड़ी आज इन्हें उपलब्ध नहीं है। यही नहीं सभ्यता के विकास के साथ वस्तु विनिमय का स्थान मुद्रा विनिमय द्वारा लिए जाने के कारण इन बर्तनों का महत्त्व कम हो गया और इनके स्थान पर धातु व प्लास्टिक के बर्तन अधिक प्रचलित हैं। फलतः ज्यादातर राजी लोग खेती और मजदूरी कर जीवन यापन करते हैं। इस पारम्परिक कला के लिए न तो उनके पास समय है और न ही सुविधाएँ।

5. इन दोनों ही समूहों का मुख्य भोजन जंगली कंदमूल और रतालू में प्राप्त जंगली कार्बोहाईड्रेट है। प्राचीन काल में राजी मुख्य रूप से 'डाइओमेलानोफीमा' कंद एकत्रित करते थे जबकि राउते 'डाइओस्कोरिया' तथा 'आओकासिया मकरोरहिजा' का संग्रह करते थे। कृषि के विकास के साथ आज दोनों ही जातियों के भोजन का अभिन्न अंग चावल, गेहूं के साथ-साथ जंगली मशरूम तथा फल-फूल है।

6. खानाबदोश या घुमन्तू समूह होने के कारण राउते दैनिक मजदूरी, कृषि या जानवरों को पालने-चराने का कार्य आज भी नहीं करते हैं। जबकि भारत सरकार द्वारा धन आदि की सहायता के लालच से स्थायी जीवन यापन करने वाले राजी समुदाय ने धनोपार्जन के लिए कृषि, दैनिक मजदूरी आदि कार्य आरम्भ कर दिए हैं।

7. सगोत्रता संगठन दोनों समूहों में समान है। इनके यहाँ पितृ सत्तात्मक सगोत्रता मिलती है। स्वकेन्द्रीय परिवार व्यवस्था, स्वस्थानीय आवास, एक पत्नी विवाह, जातीय समूहान्तर्गत विवाह परम्परा, उभय पक्षीय ममेरे, फुफेरे भाइयों से विवाह की छूट आदि परम्पराएँ दोनों जातियों में समान हैं।

8. बाह्य जगत या पड़ोसियों से मेल-मिलाप, सामाजिक अन्तःक्रिया न करने की आदत दोनों समूहों में मिलती है। राउते समुदाय में आपसी भाईचारे की भावना अधिक दृढ़ है किन्तु समुदाय के जो लोग स्थायी जीवन के पक्षधर हैं उन्हें ये पसन्द नहीं करते और समूह-बाहर करते हैं तथा उन्हें 'वास्तविक/सच्चा-राउते' नहीं मानते हैं।

उपरि वर्णित समान सांस्कृतिक अभिलक्षण इस तथ्य के संकेतक हैं कि सम्भवतः इन दोनों समूहों के पूर्वज एक होंगे और दोनों की भाषा में कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य होगा।

## भाषिक समानताएँ

दो भाषाओं के मध्य प्राप्त भाषिक समानता को स्पष्ट करने का एक उपयुक्त तरीका 'स्वादेश शब्द सूची' की तुलना कही जा सकती है। निम्न तालिका में स्वादेश शब्द सूची का हिन्दी अनुवाद तथा राजी एवं खामची समतुल्यों को अंकित किया गया है :

### तालिका - 1

### स्वादेश शब्द सूची-100

| क्र.सं. | शब्द सूची | हिन्दी | राजी | खामची |
|---|---|---|---|---|
| 1. | I | मैं | naa | ngaa |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 2. | you, thou | तुम | nang | naa, nhhang |
| 3. | we | हम | naani jammaa | ngaa, na, nani |
| 4. | this | यह | ai | ii |
| 5. | that | वह | aiyaa | he |
| 6. | who | कौन | chuin, hũ | `se; tse, nhham? |
| 7. | what | क्या | hu, ghe | hai, hang |
| 8. | not | नहीं | haa | nai, na~(as verb suffix:-re/rai) |
| 9. | all | सब | jammaa-jammal | mwalyae |
| 10. | many | बहुत | jhikkal | bo-kani, bo, buoh |
| 11. | one | एक | Daa, ga | daa |
| 12. | two | दो | nii~nhii | nhi |
| 13. | big | बड़ा | bainaa | ghaare |
| 14. | long | लम्बा | lang | - |
| 15. | small | छोटा | Tuhaa, chui-ce | lhha? |
| 16. | woman | औरत | maThialaa | umaakhala, umaa |
| 17. | man | आदमी | manjha | ba, s'ye; s'yela, möukyaa |
| 18. | person | व्यक्ति | mancahwa | mi; mur; murka, mukala |
| 19. | fish | मछली | boraa | gaah, gap |
| 20. | bird | चिड़िया | gidhaa/bwaa? | bwaah, bua? |
| 21. | dog | कुत्ता | kuii~kui | kwui |
| 22. | louse | जुंआ | sira | shuhroh |
| 23. | tree | पेड़ | shiing | s'iu; tsiu, shing |
| 24. | seed | बीज | biye | - |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 25. | leaf | पत्ती | huwaah, huwaa-aa, khuaa | hwaah, wa? |
| 26. | root | जड़ | jadao | goy, nyuri (wild yams), dz 'ra |
| 27. | bark | छाल | siing khallo/ bakoriyo | thaapa, thakpa |
| 28. | skin | खाल | khallyai | kiri; kriakaa, kirikyae |
| 29. | flesh (meat) | मॉस | sya~shyaau | s'yaa, yaa, pyaa, s'iu, shiae? |
| 30. | blood | खून | khui~hwiy | s'ui, ks'ap |
| 31. | bone | हड्डी | haDang | haare, haar'm |
| 32. | grease | तेल | bahaa | ge; gela |
| 33. | egg | अण्डा | anDaa | bhi; bhibhiya, bhiya |
| 34. | horn | सींग | sioang | sikk'm |
| 35. | tail | पूंछ | pucheraa | muahta, mukyae |
| 36. | feather | पंख | pakhaa | phakaa, pwohx |
| 37. | hair | बाल | haamuu | rung |
| 38. | head | सिर | gaRaa | garaah, g'rh*h*a |
| 39. | ear | कान | ghunaa/gunaa | gunaah |
| 40. | eye | आंखें | mhike/nhiike | mikaah; mhiiga |
| 41. | nose | नाक | shinaa | 'sinaah, shinga |
| 42. | mouth | मुंह | khaaber | chyu(re), mu |
| 43. | tooth | दाँत | daaRo | s'wöah, tshwa |
| 44. | tongue | जीभ | jibaiRo | laale, muuhm, mh*h*wOm |
| 45. | fingernail | नाखून | nhiang | leehm, lh*h*ṛl |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 46. | foot | पंजा | bhaa, panjaa | bhaah |
| 47. | knee | घुटना | puhai | phukh, gaTho |
| 48. | hand | हाथ | halao~haake | aakhaa |
| 49. | belly (stomach) | पेट | laado | guduu, gudong, photo (`entrails') |
| 50. | neck | गर्दन | gardhan | manto, m'nthu, ghaature |
| 51. | breast | छाती | cucaa | susi |
| 52. | heart | दिल | mane/dil | paatii, mutu |
| 53. | liver | जिगर | gurdaa | kharabdaah, bara |
| 54. | drink | पीना | tung~jaa | jhum,jaaya,hum,ti-i |
| 55. | eat | खाना | jaako,jale, jaa-aa | jaa; jaaku; jaaya, ka; kaare |
| 56. | bite | काटना | kaiyaa | ka; kaiyaa, kŚ |
| 57. | see | देखना | cepaa~dabb ko | bigaap, bigh*h*ae |
| 58. | hear | सुनना | huung-ye | gunṭ, gunaare |
| 59. | know | जानना | dahau | - |
| 60. | sleep | सोना | iishe | s'ii; s'iyaah, seh, kwih |
| 61. | die | मरना | shiiya | s'i; s'iya |
| 62. | kill | मारना | haate-ko | ath-oh |
| 63. | swim | तैरना | raa pe | kha-buwa, bou-kha-buwa, bowti |
| 64. | fly | उड़ना | bo | bwaah (n.?), pharaei (v.?) |
| 65. | walk | चलना | ogaa haa re | hwaa-I, khwa |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 66. | come | आना | biir/bi-ir | bi; biye, bi-e, pi-ye |
| 67. | lie | लेटना | leT | (lie down)=lat |
| 68. | sit | बैठना | khuung yaa | sweh, sweh guni; ays-apha, dzuye |
| 69. | stand | खड़े होना | uTha | phuyo; phayaah, phuyu |
| 70. | give | देना | bai-y, baiko | nyaa; dayaa, khaalu |
| 71. | say | कहना | boliya a | (to speak) khaama; thi-i, shi dhaami |
| 72. | sun | सूर्य | diiho | bel, berh, dhömu |
| 73. | moon | चन्द्रमा | dunnaa~junnaa | jhyunna, bair, berh |
| 74. | star | तारे | taaraa | tui-tui |
| 75. | water | पानी | tii, chi | tsi |
| 76. | rain | वर्षा | barkhaa (tii bii haa re | s'gyae; tii-i |
| 77. | stone | पत्थर | dhummaa | - |
| 78. | sand | बालू | ballyaa | bolyaa |
| 79. | earth | पृथ्वी | dehe | [N] desha, samsar |
| 80. | cloud | बादल | diiho | dewaah, dhuma |
| 81. | smoke | धुँआ | dhukaa | dhukaöh, dhuma |
| 82. | fire | आग | bhR̤oy~mhai | mhe:h, muhr̤Ś |
| 83. | ash | राख | dhuli | kuhli, duhri, dhulo |
| 84. | durn | जलना | palao~palawa | - |
| 85. | path | रास्ता | yong~yung | yaun-khyaa-nu, yung |
| 86. | mountain | पहाड़ | biTTaa; dhaRe | manam (hill); malam, (peak) kheD' |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 87. | red | लाल | Tulhariyaa | tui, sha |
| 88. | green | हरा | hariyo/hariya | hwaa (dark green-ga-gina),kamaiyo, k'm'iu |
| 89. | yellow | पीला | pero, piilṝ | byaalo, hwi-byelo, p'rh*ho* |
| 90. | white | सफेद | dhaurya | dhyaulyaa, dhyaurya, dhauRia, ghouraya |
| 91. | black | काला | Tuknahaa~Tokenyaa | tokaanye, namaro |
| 92. | night | रात | gaire | gadhir |
| 93. | hot | गर्म | gamma/garam | chunu, ghohmohw |
| 94. | cold | ठंडा | ThanDa | jungha, dzung |
| 95. | full | भरा | bharo | (filled) jimai, bwohb |
| 96. | new | नया | nung | niu, nhu:, n 'u |
| 97. | good | अच्छा | nhikah/nikah | namar (person), Iagalo |
| 98. | round | गोल | baTulo | - |
| 99. | dry | सूखा | kaarau/kaRo | karaao |
| 100. | name | नाम | naam~naamu | mii~hga |

तालिका में आए सजात शब्दों (cognate words) पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि सौ शब्दों में से पैंसठ शब्द तुलनीय हैं। अन्य पैंतीस शब्दों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इनमें से दस शब्द अज्ञात स्रोत वाले हैं; चार शब्दों के स्रोत पर प्रश्नचिह्न है। राजी वक्ताओं ने बीस आगत आर्य शब्दों का प्रयोग किया जिनके लिए राउते अनार्य शब्दों का प्रयोग करते हैं। सूची में एक ऐसा शब्द है जहाँ राजी तिब्बती-बर्मी शब्द का प्रयोग करते हैं और राउते आर्य (नेपाली) का। तुलनीय पैंसठ शब्दों में 83% ऐसे शब्द हैं जिनका स्रोत समान प्रतीत होता है। शब्द सूची में प्राप्त इस प्रकार की आधारिक शब्दावली सम्बन्धी समानता दोनों समूहों की भाषाओं के मध्य प्राप्त वंशानुक्रमिक सम्बन्ध का ठोस प्रमाण देती है। सूची में आए अतुलनीय

शब्दों की संख्या को देखते हुए हमने समस्या के समाधान के लिए एक आर्थी क्षेत्र (शरीर के अंग सूचक शब्दों) की तालिका निर्मित की :

**तालिका-2**

| क्र.सं. | शरीर के अंग | हिन्दी | राजी | खामची |
|---|---|---|---|---|
| 1. | arm | बाँह | paati | aakhaa, waau |
| 2. | belly | पेट | laado | photo gudu~gudong; |
| 3. | blood | खून | khui | s'ui; kshap |
| 4. | breasts | छाती | cucci~cucaa | susi |
| 5. | ear | कान | ghunaa~hunaa | gunaa |
| 6. | eye | आँख | nhiike | miihka |
| 7. | finger | उंगली | aguliya | hubela |
| 8. | fingernail | नाखून | nhiang | lem~leihng~liihm |
| 9. | foot | पंजा | bhaa | bhaa |
| 10. | hair | बाल | haamu~hamo~ ha ngo | N |
| 11. | hand | हाथ | haake | aakhaa, laaku |
| 12. | head | सिर | gaRaa | garaa |
| 13. | hip, buttocks | नितम्ब | PuTTha | s'yi-li |
| 14. | goiter | घैंघा | - | kok |
| 15. | knee, joint | घुटना | puhei~puhai~ puher | phuk |
| 16. | leg | पैर | bhaa | bhaa |
| 17. | lip | ओंठ | autha | cyure; cyura |
| 18. | mouth | मुंह | khaaber | cyure; mu~muuhm~mun |

contd....

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 19. | neck | गर्दन | gardhan | manto; mani; ghaature (<N) |
| 20. | nipple | स्तनाग्र | chucaa | chuchu |
| 21. | nose | नाक | s'inaa | tsinaa~sinaa |
| 22. | nostrils | नथुने | s'inaa ugaao | dhodo |
| 23. | shoulders | कंधा | kadhang | kum [N] |
| 24. | skin | खाल | khallyai | kiriki~kiliki~kikaa |
| 25. | teeth, tooth | दाँत | daRo | swaṚh; chuwaa; miu |
| 26. | thighs | जांघ | jangaa | kare, bhaa |
| 27. | vulva | भग | - | pi |

उपर्युक्त तालिका का परीक्षण राजी व खामची भाषा की शब्दावलियों में प्राप्त उच्चस्तरीय समानता को एक बार पुनः प्रतिपादित करता है। इन भाषाओं एवं अन्य तिब्बती-बर्मी भाषाओं के शरीर के अंग सूचक शब्दों के मध्य समानता का निरीक्षण करने पर स्पष्ट होता है कि ये भाषाएँ परस्पर अत्यधिक समानता रखती हैं। इनके मध्य पारस्परिक बोधगम्यता है या नहीं इस सम्बन्ध में 1997 में नन्द बहादुर सिंह ने चर्चा करते हुए कहा कि 'पश्चिमी नेपाल के ददेलधुरा जिले का एक राउते कुमाऊँ के राजियों से मिलने गया था और वे आपस में वार्तालाप कर रहे थे।' इसी प्रकार का अनुभव 1998 में मुझे हुआ जब अल्तड़ी की निवासी देवकी ने मुझे बताया कि वह मूलतः नेपाल की है और विवाह के बाद भारत आई है।

राजी-राउते जनजाति एवं भाषा इतिहास सम्बन्धी गहन अध्ययनों का अभी अभाव है किन्तु हमारे द्वारा एकत्रित सामग्री संकेत करती है कि इनका शब्द समूह प्राचीन तिब्बती भाषा से बहुत समानता रखता है। कतिपय शब्द तो पुनर्निमित प्राक् तिब्बती के सदृश ही कहे जा सकते हैं, उदाहरणार्थ :

खामची s'hui खून

राजी khui खून

चेपंग में इसका उच्चारण `wi' या `way?' मिलता है। भाषाविदों ने प्राक्-तिब्बती-बर्मी में इसका पुनर्निमाण *s-hwiy~ * s-hway (बेनडिक्ट : 1972) रूप में किया है।

भाषाओं में विद्यमान सम्बन्ध को अधिक व्यवस्थित ढंग से ज्ञात करने के लिए प्रायः भाषाविद् आरम्भ में दो भाषाओं की तुलना के पश्चात उनकी तुलना अन्य सम्बन्धित क्षेत्रीय् भाषाओं से करते हैं जिससे एक सम्बन्धित समूह का निर्माण किया जा सके (ग्रीनबर्ग : 40)। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए राजी-खामची की आधारिक शब्दावली के कुछ शब्दों की उनसे सम्बन्धित भाषाओं से तुलना की गई है:

## तालिका-3

## राजी एवं खामची की अन्य हिमालयी भाषाओं से तुलना

| English | हिन्दी | राजी | खामची | खाम | मगर | चेपंग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| one | एक | Daa | daa | daa | kat | yat,yah |
| dog | कुत्ता | kui | kwui | kui | chiuw | kui? |
| die | मरा | shiiya | shi | shi,singh | siyah | shii |
| tree | पेड़ | shing | shiu, shing | siu,shing | rukh | singh? |
| nose | नाक | shinaa | sinaah/shinga | tsina,sina | minha | s'ina |
| sleep | सो | iishe | sii/siyaah | syiaa,se | misni | ?en?, ?em? |
| fire | आग | mhai | mheh muhei, | meeh | mheeh | mheeh |
| water | पानी | ti/chi | tsi | ti/chi | di | ti |
| I | मैं | naa | ngaa | nga | nga | nga |
| you | तुम | nang | naa/nhhang | ngaa | naa | nang(s) ning(pl.) |

उपर्युक्त तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर दो परिकल्पनाएँ बनाई जा सकती हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से राजी व राउते की पूर्वज भाषा/भाषाओं ने (1) क्षेत्रीय तिब्बती-बर्मी भाषओं से अनेक शब्दों व व्याकरणिक रचनाओं को ग्रहण किया

है लेकिन ये स्वयं तिब्बती-बर्मी नहीं है अथवा (2) ये सदैव से ही तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषाएँ थीं। आज उपलब्ध सामग्री एवं साक्ष्यों के आधार पर द्वितीय परिकल्पना अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि यद्यपि इन दोनों भाषाओं एवं संस्कृतियों पर और अधिक शोध की आवश्यकता है तथापि दोनों के मध्य प्राप्त निश्चित और घनिष्ठ सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता है। सम्प्रति, विस्तृत रूपरचनात्मक एवं व्याकरणिक तुलना के अभाव में यह कहना कठिन है कि ये किसी एक भाषा की दो बोलियाँ हैं अथवा दो भिन्न-भिन्न किन्तु घनिष्ठतः सम्बन्धित भाषाएँ।

**टिप्पणी**

प्रस्तुत लेख मूलतः अंग्रेजी में लिखे गए लेख का संशोधित हिन्दी रूपान्तर है। मूल लेख का प्रस्तुतिकरण ICOSAL-4, अन्नामलाई विश्वविद्यालय में वर्ष 2003 में किया जा चुका है। इस आलेख के मूल अंग्रेजी रूप की सहलेखिका केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्यरत डॉ. जना फोर्टियर हैं।

❊ ❊ ❊

# राजी व खामची की स्वनप्रक्रियात्मक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

अपने पिछले शोधपत्र (रस्तोगी एवं फोर्टियर 2003) में हमने कुमाऊँ तथा नेपाल के सघन वनों में रहने वाले राजी व राउते जनजाति के मध्य प्राप्त समान सांस्कृतिक एवं भाषिक अभिलक्षणों की विस्तार पूर्वक चर्चा की थी और कोशीय समानता के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया था कि इन दोनों समूहों की भाषा के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

अध्ययन की अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य स्वनप्रक्रियात्मक तुलना के आधार पर इन भाषाओं के सम्बन्ध को और उजागर करने के साथ-साथ प्राक् तिब्बती-बर्मी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से इनके सम्बन्ध पर प्रकाश डालना है। भाषा वर्गीकरण सम्बन्धी अध्ययनों में इन जातियों की भाषा को राजी, जंगली और राउते नाम से पुकारा गया। (हाले 1982; ला पोला 1989; वैन ड्रिम 2001) यह एक रोचक तथ्य है कि डॉ. डी.डी. शर्मा एवं डॉ. शोभा राम शर्मा इन भाषाओं को आस्ट्रो-ऐशियाटिक परिवार से सम्बद्ध मानते हैं।

राजी एवं खामची भाषाओं के अध्ययन के आधार पर निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है :

1. सर्वनामीकरण या क्रिया पूर्वाश्रयी, जो कर्ता तथा कर्म दोनों से समान कारक में अन्विति प्रकट करते हैं।
2. रोधित व्यंजन अथवा श्वासद्वारीय रंजन।

3. संज्ञा आधार रूपों का चेतन/अचेतन वर्गों में समूहीकरण।
4. /-mi/ का प्रयोग चेतन मानवीय पर प्रत्यय चिह्नक के रूप में (सिर्फ खामची में)।
5. केवल चेतन वर्ग में बहुवचन की अभिव्यक्ति।
6. सम्मान सूचक क्रिया रूपों का अभाव।

## सामग्री संकलन

सामग्री संकलन में आने वाली समस्याओं का हमने पिछले पत्र में भी उल्लेख किया था। यह कार्य तीन कारणों से दुष्कर था। पहला 'ईश्वर नाराज हो जाएंगे' यह कहने वाले राजी व राउते सदैव बाह्य दुनिया से आए लोगों को अपनी भाषा नहीं सिखाना चाहते हैं। राउते अपनी भाषा को शक्तिवान समझ उसे अजनबियों से बाँटना नहीं चाहते हैं जबकि वर्तमान में राजी अपनी भाषा के प्रति हीन भावना से ग्रस्त हैं उसे तुच्छ समझते हैं जो उन्हें दो वक्त का खाना और कपड़ा नहीं दे सकती है। दूसरा कारण सघन पर्वतीय वनों में बसी इनकी दुर्गम बस्तियाँ हैं। साथ ही बहुत से वक्ता घुमन्तु जीवन पसन्द करते हैं। तीसरी समस्या थी इनकी भाषा और जातिगत विशेषताओं को ज्ञात करने के लिए विस्तृत अध्ययन का अभाव, क्योंकि हिमालय की तलहटी पर 'ब्रोकन ट्राइब्स' के रूप में रहने वाले राजी एवं राउते वास्तव में न तो भाषाविदों के लिए और न ही नृशास्त्रियों के लिए महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि देते हैं और न ही ये 'शुद्ध आखेटक' वर्ग में आते हैं।

1997 में डॉ. फोर्टियर ने राउते जनजाति का चार महीने नृजातिगत अध्ययन किया और भाषिक सामग्री का संकलन दो वृद्ध पुरुषों तथा कई अन्य पुरुष व महिला सूचकों की सहायता से किया। मैंने 1998 से 2004 के बीच कई बार क्षेत्रीय कार्य किया और लगभग दो माह अल्तड़ी, जमतड़ी, जौलजीवी, किमखोले बस्तियों में रहकर मुख्य रूप से तीन पुरुष व दो महिला सूचकों से सामग्री एकत्रित की।

## स्वनप्रक्रियात्मक अभिलक्षण

राजी व खामची के सम्पूर्ण स्वनप्रक्रियात्मक विश्लेषण के अभाव में इस शोध पत्र में स्वनिक लिप्यन्तरण का ही प्रयोग किया जा रहा है। उपलब्ध सामग्री

के आधार पर खामची के निम्नांकित स्वनिमों की चर्चा की जा सकती है :

**खामची**

| | |
|---|---|
| कंठ्य | g, k, ng, ?, h |
| वर्त्स्य-तालव्य | j, sh, ch |
| दन्त्य | d, t, n, s, r, l |
| ओष्ठ्य | p, b, m |
| अर्द्धस्वर | w y |

नेपाली से आगत शब्दों में मूर्धन्य T,D,R का प्रयोग मिलता है। खामची के अन्य महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण निम्नलिखित हैं :

1. [k] स्वनिम के सहस्वन [q] का प्रयोग, यथा- kokaa का उच्चारण [qoqhaa] भी मिलता है।
2. शब्दान्त में आगत h, E के बीच सार्थक भेद हो सकता है। इस विषय में अभी कुछ निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता।
3. शब्दान्त स्थिति में दीर्घ द्वित्व स्वर अवरोही तान में मिलता है।
4. महिला वक्ता काकलरंजित तान का प्रयोग करती हैं।

**राजी**

राजी में लगभग चौबीस व्यंजन और सात स्वरों की चर्चा की जा सकती है :

| | |
|---|---|
| ओष्ठ्य | p, b, m, ph, bh, w |
| वर्त्स्य-तालव्य | sh, s |
| दन्त्य | t, d, n, l, th, dh |
| मूर्धन्य | T, D, Th, Dh, R |
| तालव्य | c, j, y, ch, jh |
| कंठ्य | k, g, ng, kh, gh |

राजी भाषा के अन्य महत्त्वपूर्ण भाषिक अभिलक्षण निम्नवत हैं :

1. कहीं कहीं स्वर के नासिक्यीकरण की प्रवृत्ति मिलती है जिसे कुमाउँनी या हिन्दी का प्रभाव भी कह सकते हैं।
2. / N / का प्रयोग आगत शब्दों में शब्द मध्य व अन्त में दृष्टिगत होता है। सामान्यतः नासिक्य ध्वनियों की प्रमुखता है।
3. कतिपय उदाहरणों को छोड़कर मूर्धन्य व महाप्राण ध्वनियाँ आगत तत्वों तक सीमित हैं।
4. राजी एक प्राकृतिक लिंग विभाजन वाली भाषा है। लिंग का प्रभाव मानवीय संज्ञाओं पर पड़ता है।
5. वचन की अभिव्यक्ति चेतन संज्ञाओं में एक वचन और बहुवचन के अन्तर्गत होती है।
6. राजी तथा खामची दोनों में ही मूल संख्या सूचक शब्द छह तक हैं। अन्य शब्द आर्य भाषाओं से आए हैं।
7. वर्तमान राजी का पदक्रम लचीला है। वक्ता ovs, sov तथा svo तीनों का प्रयोग बिना अर्थगत भिन्नता के करता है।

## प्राक् तिब्बती-बर्मी ( प्रा.ति.ब. ) से तुलना

## धातु के अन्त में स्वन स्थिति

दोनों ही भाषाओं में ज्यादातर धातुएँ स्वरान्त हैं। व्यंजनान्त धातुएँ प्रायः नासिक्य m, n या तरलस्वन r, l अथवा अर्द्धस्वर y, w पर अन्त होती हैं। कभी-कभी कंठ्य ng या श्वासद्वारीय रंजन ? अथवा स्पर्श t, k का भी प्रयोग होता है। घोष व्यंजन अक्षरान्त में यदा-कदा ही मिलते हैं। अनेक नेपाली एवं कुमाउँनी आगत शब्दों को राजी व खामची स्वनिमिक नियमों के अनुसार परिवर्तित कर लिया गया है, जैसे- dudh < dudae खामची; राजी dudhang । संघर्षी तथा सघोष स्पर्श अक्षरान्त में नहीं दृष्टिगत होते हैं। धातु तथा शब्दान्त स्थिति में आक्षरिक व ऊष्म नहीं मिलते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि प्राक् तिब्बती बर्मी के अन्त स्पर्श रूप स्वर युक्त होकर द्वितीय अक्षर में रूपान्तरित हो जाते हैं, जैसे :

* mik (आँख) > mika [mi : hka]

∗ lak (हाथ) > aka [a : kha:]

मुख्यतः राजी और खामची के अन्तिम कंठ्य प्रा.ति.ब. रूपों के सदृश मिलते हैं लेकिन उनमें अन्त में स्वर संयुक्त हो जाता है। प्रा.ति.ब. का अन्तिम /s/ भी समान नहीं रहता, जैसे- तिब्बती nis (दो) > खामची ni तथा राजी nii~nhii.

## धातु के आरम्भिक स्वन की स्थिति

खामची व राजी के समस्त व्यंजन धातु के आरम्भ में मिलते हैं। निम्न तालिकान्तर्गत 1972 में बेनडिक्ट द्वारा गठित व प्रकाशित प्राक् तिब्बती-बर्मी धातुओं की तुलना खामची व राजी से की गई है। प्रा.ति.ब. में प्राप्त / k/, /g/ और / t / इसी रूप में खामची में मिलते हैं। कहीं कहीं तालव्यीकरण [k] > [ch] कोमलतालव्यीकरण [t] > [k] या [q], और/अथवा घोषीकरण [t] > [d] घटित होता है।

* k > k ~ kh ~ ch

* g > g

* t > t ~ tc

**तालिका- 1**

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| चाचा | kuw | kuwa | kakka[IA] |
| वाणी | ka | ka ~ kha | khai |
| कुत्ता | kwiy | kwui(y) | kui |
| खाल | kwchak | kiri~kriya | khalyai |
| मुंह | ku | ciu | kha-ber |
| नाच | gan | gan | nacco [IA] |
| पोशाक | gar | gar | – |
| सिर | gaw | gara | gaRa |
| पानी | ti(y) | tci ~ ti-i | ti-i~ chi |
| थूकना | tu-k | tuk | thuke |

| | | | |
|---|---|---|---|
| गर्दन | tuk | tuk | gardhan [IA] |
| काला | tyae | tokangya ~ tokanya | tuknaha |
| रखना | ta | ta ~ to | – |
| बैठना | tu-ng | guni | khu:ngya |
| एक | tik | da | Da |

प्रा.ति.ब. /d-/ अन्य रूपों में परिवर्तित मिलता है जैसे /l-, h-, b-, p- या h-/। साथ ही कतिपय उदाहरणों में /t-/ दूसरे व्यंजनों में परिवर्तित हो जाता है।

## तालिका-2

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| लम्बाई | due | langka | lang |
| यह | day de | he ('that), a-i-('this) | ai (this) aiya (that) |
| अण्डा | di | b-biya~ bhbhiya | anDa |
| गाँव | dyal~tyal | nau | naao |

प्रा.ति.ब. /ts-/ के लिए खामची में दो रूप मिलते हैं जिनमें से एक उदाहरण में /ts/>/tw/ में परिवर्तित मिलता है जबकि दूसरे में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता है।

## तालिका-3

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| काटना | tsywar | twããk | kaTTo |
| लाल | tsyak~tshak | tsha~sha | tulhariya |

प्रा.ति. ब./dz/ के स्थान पर दोनों बोलियों में तालव्यीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है :

**तालिका-4**

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| खाना | dza | jaa~dza | jaa, jaa-le |
| बहन | dzar | ga-tu | goshina |
| हरा | dzim | hwa | hariya |

प्रा.ति.ब. में व्यवहृत /p/ स्वन् खामची व राजी के कुछ शब्दों में यथावत् प्रयुक्त मिलता है जबकि अन्य शब्दों में /ph, h/ आदि स्वनों में परिवर्तित मिलता है :

**तालिका-5**

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| स्त्री लिंग | pi (y) | 'vulva' pi (y) | taru |
| दादी | piy | iya | ija |
| पिता | pa | paksha | ba |
| पत्ता | pak | hwaa | huwaah, khuaa |
| सफेद | plu | dhyaurya | dhaurya, (Nepal Raji) plong |
| सुबह | prang | yung | yung |
| पर | pu-k | dong, gu-dong | la do |
| उड़ना | pyam | pharayi, bwaa | bo |
| घुटना | put | phuk~phuc | puhai |

प्रा.ति.ब. /b/ में स्थिरता मिलती है तथा आगत शब्दों को छोड़कर शेष स्थानों पर यह स्वन् पूर्ववत प्रयुक्त हो रहा है।

### तालिका-6

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| देना | biy | biy | bai-ko, bai-y |
| पैर | bop | baa | bhaa |
| नाम | brang | mingga | naam [IA] |
| चिड़िया | bya | bwaa ~ buwa | bos |
| कीड़ा | buw | bwaa ~ buwa | kiire [IA] |
| आओ | byon | bi | bii, biir |

प्रा.ति.ब. के अन्य स्वनों से तुलना न करते हुए हम सिर्फ /s, sh/ की चर्चा करेंगे।

### तालिका-7

| हिन्दी | प्रा.ति.ब. | खामची | राजी |
|---|---|---|---|
| तीन | g-sum | sum | khung, sum |
| जुँआ | shar~sar | shuroh | sira |
| मारना | g-sat | atho | hate-ko |
| पेड़ | sing | sing | sing |
| मरना | siy~sy | shi:~shiya | shiya |
| मांस | sya~sha | shyaa | sya |

प्रा.ति.ब. रूपों से खामची और राजी रूपों की तुलना इस तथ्य की संकेतक है कि इन भाषाओं में (1) तालव्यीकरण, (2) नासिक्यीकरण, (3) आरम्भिक व्यंजन स्वन लोप, (4) अघोषीकरण तथा (5) दो व्यंजनों के मध्य स्वरागम आदि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं।

उपर्युक्त वर्णित प्राक तिब्बती बर्मी स्वनों से तुलना के अतिरिक्त हमने स्वादेश शब्द-सूची की तुलना की। स्वादेश शब्द सूची में प्राप्त खामची-राजी सजात शब्दों का परीक्षण इस बात की सूचना देता है कि दोनों में 100 में से 65 शब्द तुलनीय हैं और जो समान स्रोत से व्युत्पन्न कहे जा सकते हैं। स्वादेश -100 शब्द सूची की राजी, खामची के साथ अन्य क्षेत्रीय बोलियों के साथ की गई तुलना के निष्कर्ष निम्न तालिका में प्रस्तुत है :

## तालिका-8

### खामची तथा राजी की अन्य हिमालयी बोलियों से तुलना

| समूह | तुलनीय भाषाएँ | तुलनीय मद | सजात शब्दों की संख्या | सजात शब्दों का प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| प.मध्य हिमालयी बोलियाँ | चेपंग | 87 | 38 | 44 |
| | राजी (कुमाऊँ में प्रचलित) | 56 | 46 | 8 |
| | राजी नेपाल में व्यवहृत | 60 | 54 | 90 |
| मध्य हिमालयी | खाम | 84 | 26 | 31 |
| | मगर | 84 | 21 | 25 |
| | कैके | 84 | 20 | 24 |
| पूर्व-हिमालयी/ बोडिश, किरान्ती | खैलिंग | 84 | 19 | 23 |
| | नेवारी | 84 | 19 | 22 |
| | थाकली | 84 | 17 | 20 |
| तिब्बती हिमालयी | गुरुंग | 84 | 13 | 15 |
| मध्य हिमालयी बोडिश | सुनवर | 84 | 15 | 17 |
| | तमंग | 84 | 15 | 17 |
| | शेरपा | 84 | 17 | 19 |
| | जिरेल | 84 | 17 | 20 |

स्पष्ट है कि चेपंग तथा राजी-खामची भाषाओं में 44 प्रतिशत सजात शब्द हैं जो कि सूची में सर्वाधिक है तथा इनसे कम सम्बद्धता कैके, मगर तथा खाम के साथ दृष्टिगत होती है (लगभग 25 से 31 प्रतिशत)।

शोधपत्र में प्रस्तुत कालक्रमिक तथा क्षेत्रीय एककालिक तुलना इस तथ्य की संकेतक है कि विश्लेष्य भाषाएँ राजी व खामची घनिष्ठतः सम्बन्धित भगिनी भाषाएँ हैं। इनकी स्वनिमिक व्यवस्थाओं में निश्चित अनुरूपता दृष्टिगत होती है। इनके मध्य उच्चस्तरीय कोशीय समानता भी देखी जा सकती है। ये पिछले लगभग सौ वर्षों में विलग होना प्रारम्भ हुई हैं। हम यह कह कर लेख को विराम देना चाहते हैं कि यद्यपि खामची एवं राजी के व्याकरण पर अभी शोध की आवश्यकता है तथापि यह निश्चित है कि दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। रूपरचना एवं व्याकरण के स्तर पर किया गया विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करेगा कि ये एक ही भाषा की दो बोलियाँ मानी जाएं या दो स्वतन्त्र घनिष्ठतः सम्बन्धित भाषाएँ।

***

# खण्ड - 3 व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

- व्यतिरेकी विश्लेषण - संक्षिप्त परिचय
- हिन्दी-अंग्रेजी की बंधुतावाची शब्दावली का व्यतिरेकी विश्लेषण
- हिन्दी-अंग्रेजी की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ - व्यतिरेकी अध्ययन
- हिन्दी-अंग्रेजी की लिंग व्यवस्था - व्यतिरेकी अध्ययन
- हिन्दी-अंग्रेजी वचन व्यवस्था - व्यतिरेकी विश्लेषण
- कोशीय समतुल्यता की समस्याएँ - अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद के सन्दर्भ में

# व्यतिरेकी विश्लेषण

## संक्षिप्त परिचय

दो या दो से अधिक वस्तुओं, उपादानों, विचारों या कथनों की तुलना उनके मध्य प्राप्त समानता या विषमता का ज्ञान कराती है। समानता संकेतक है संयोजन की जबकि विषमता उनको वियोजित करने का कार्य करती है। व्यतिरेक का अर्थ है 'विरोध' जो अपना मूल्य वियोजन पक्ष से ग्रहण करता है। व्यतिरेकी विश्लेषण दो या अधिक भाषाओं के मध्य प्राप्त संरचनात्मक समानताओं के आधार पर विषमताओं को निर्धारित करता है। विश्लेषण कर्ता किसी अध्येय भाषा की संरचना का विश्लेषण कर उसकी तुलना दूसरी भाषा की संरचना से करता है। इस तुलना द्वारा उसे दोनों भाषाओं में प्राप्त समानताओं का ज्ञान होता है। भाषाओं में प्राप्त संरचनागत ये समानताएँ स्वतः ही असमानताओं या व्यतिरेक के बिन्दुओं को उद्‌घाटित करती हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण में समकालिक तुलना पर बल दिया जाता है और वर्तमान समय में भाषा की जैसी व्यवस्था/संरचना है उसकी तुलना की जाती है। दो या अधिक भाषाओं के द्विकालिक तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य भाषा परिवार का निर्माण करना, भाषा पुनर्गठन करना आदि होता है और इस प्रकार के अध्ययन ऐतिहासिक-तुलनात्मक कहलाते हैं। स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण तुलनात्मक भाषाविज्ञान से प्रकृतिगत भिन्नता रखता है। इसमें अध्ययनकर्ता का ध्यान भाषा की वर्तमान संरचना पर केन्द्रित रहता है, उसके ऐतिहासिक रूप या अन्य भाषाओं से उसके सम्बन्ध पर ध्यान नहीं दिया जाता है। जबकि तुलनात्मक अध्ययन तुलनीय भाषाओं के कालक्रमिक विकास को भी अध्ययन के केन्द्र में रखता है। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा की जाने वाली समकालिक तुलना भाषा के किसी एक संरचनात्मक स्तर यथा- स्वनप्रक्रियात्मक या रूपरचनात्मक आदि अथवा समस्त स्तरों (जैसे- स्वन, रूप, वाक्य, अर्थ, संस्कृति) पर की जाती है। यही नहीं जहाँ दो या अधिक भाषाओं के मध्य व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है वहीं एक

भाषा के विविध बोली रूपों के मध्य प्राप्त समानता व असमानता की चर्चा भी की जा सकती है।

इस विश्लेषण हेतु भाषाविद् भाषाओं की समकालिक तुलना के लिए प्रचलित प्रारूपों में से किसी का भी चयन कर सकते हैं। पारम्परिक, संरचनात्मक, प्रजनक आदि किसी एक प्रारूप के आधार पर अध्ययनकर्ता दो भाषाओं में प्राप्त विषमताओं को रेखांकित करता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण के उदय का काल 1953 में हागेन एवं वाइनरिख द्वारा किए गए द्विभाषिकता के अध्ययन से माना जाता है किन्तु इसे सैद्धान्तिक आधार देने का श्रेय राबर्ट लेडो को जाता है। जिन्होंने 1957 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक्स अक्रॉस कल्चर्स' में अपने पूर्ववर्ती विद्वान फ्राइस के मत को आधार बनाकर यह स्पष्ट किया कि दो भाषाओं की व्यवस्थित तुलना द्वारा समान, असमान और अर्धसमान संरचनात्मक तत्वों का ज्ञान किया जा सकता है। फ्राइस का विचार था कि दो व्यवस्थाओं का सम्पर्क एक नवीन अधिव्यवस्था को जन्म देता है जिसमें दोनों भाषाओं की सम्मिलित व्यवस्था दृष्टिगत होती है। कतिपय विद्वानों ने व्यतिरेकी अध्ययन का मूल बीज अमरीकी नृभाषाविद् फ्रॉज बोआज के कार्यों में माना है। 1889 में बोआज ने द्वितीय भाषा की ध्वनियों के शिक्षण में मातृ भाषा की ध्वनियों की भूमिका को रेखांकित किया। उनके विचारानुसार दूसरी भाषा सीखने वाला व्यक्ति नई भाषा की ध्वनियों को पहले सीखी गई भाषा के सन्दर्भ में ही ग्रहण करता है। लगभग दस वर्ष उपरान्त हैनरी स्वीट ने भी इसी तथ्य को पुनः रेखांकित किया। 1930 के लगभग प्रकाश में आए, प्राग् सम्प्रदाय के अधिष्ठाता वी. मैथेसियस के सिद्धान्त से भी व्यतिरेकी अध्ययन के आरम्भ को जोड़ा जाता है। इनके मतानुसार किसी भाषा की सम्पूर्ण संरचनात्मक व्यवस्था को ज्ञात करने के लिए अन्य भाषाओं से उसकी तुलना अनिवार्य होती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय युद्ध सैनिकों के लिए अन्य भाषा शिक्षण की अनिवार्यता के कारण तत्कालीन विद्वानों ने भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर शिक्षण सामग्री का निर्माण किया जो अत्यन्त प्रभावशाली व उपयोगी सिद्ध हुई। फलस्वरूप व्यतिरेकी विश्लेषण के निष्कर्षों का अनुप्रयोग भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में होने लगा। मातृ भाषा अर्जन के समय बच्चे के मस्तिष्क में किसी भी भाषा की संरचना नहीं होती किन्तु द्वितीय भाषा अधिगम के समय स्थिति भिन्न होती है। मातृ भाषा की

संरचना व नियम उसके मस्तिष्क में अवस्थित रहते हैं। अतः जहाँ दोनों भाषाओं के मध्य समानता होती है वहाँ कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है किन्तु जहाँ दोनों भाषाओं की संरचना में विषमता होती है वहाँ पहले सीखे गए नियम व्याघात उपस्थित करते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा अध्ययनकर्ता इन्हीं विषमताओं का पता लगा कर सम्भावित कठिनाई वाले क्षेत्र के विषय में पूर्वानुमान करता है और तदनुसार पाठ-सामग्री का निर्माण करता है। दीर्घकाल तक व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग भाषा शिक्षण के क्षेत्र में ही होता रहा किन्तु धीरे धीरे विद्वानों ने इसका प्रयोग अनुवाद के क्षेत्र में भी आरम्भ किया। स्रोत भाषा में कही हुई बात को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद कहलाता है। विद्वानों ने मूल पाठ के विश्लेषण तथा लक्ष्य भाषा पाठ के पुनर्गठन के मध्य की प्रक्रिया को अन्तरण की संज्ञा दी है। प्रत्येक भाषा मूल संदेश को अपने ढंग से भाषिक इकाइयों में बाँधती है उस संदेश को दूसरी भाषा में पहुंचाना ही अनुवादक का कार्य होता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह अभिव्यक्ति के धरातल पर संदेश का पुनर्विन्यास करता है। अन्तरण की यह प्रक्रिया अनुवादक के मस्तिष्क में घटित होती है तथा इसकी प्रकृति त्वरित एवं अन्तर्ज्ञानमूलक होती है। अन्तरण करते समय दो सिद्धान्तों का निर्वाह आवश्यक होता है- पहला मूल पाठ के अर्थ के सममूल्य अर्थ की खोज, दूसरा- समतुल्यता, जिसके आधार पर अनुवादक अनूदित पाठ को शैली और अभिव्यक्ति के धरातल पर निर्मित करता है। अनुवाद करने के लिए अनुवादक स्रोत व लक्ष्य भाषा की तुलना करते हुए उनके व्यतिरेक को ज्ञात कर तत्पश्चात लक्ष्य भाषा की संरचनानुसार प्रस्तुति करता है। अतः अनुवादक की दृष्टि से भाषा के विविध तत्वों - स्वन, रूप, शब्द, वाक्य आदि का व्यतिरेकी विश्लेषण अत्यन्त उपयोगी होता है। अनुवादक का कार्य स्रोत भाषा में उपलब्ध सामग्री को लक्ष्य भाषा में अन्तरित करना है अतः स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के मध्य जहाँ समतुल्य नहीं मिलते वहाँ अनुवादक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कह सकते हैं कि लक्ष्य भाषा में उपयुक्त समतुल्यों को खोज निकालना ही अनुवादक की प्रमुख समस्या होती है। स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद दोनों का सम्बन्ध दो भाषाओं से होता है जहाँ व्यतिरेकी अध्ययनकर्ता एक भाषा की संरचना की तुलना दूसरे से कर व्यतिरेक के बिन्दु ज्ञात करने का प्रयास करता है वहाँ अनुवादक एक भाषा के कथन को दूसरे में रूपान्तरित करने का। प्रायः अनुवादक के समक्ष एकाधिक विकल्प होते हैं और वह उपलब्ध समतुल्यों में से किसी एक विकल्प का ही चयन करता है। अनुवाद में निहित विकल्प चयन की इस प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से व्यतिरेकी विश्लेषण का ही

आश्रय लिया जाता है। यही नहीं यह विश्लेषण स्रोत व लक्ष्य भाषा के मध्य घटित स्तर सम्मिश्रण की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। दो भाषाओं की इन विशिष्टताओं का ध्यान न रखने पर प्रायः अनुवादक शाब्दिक अनुवाद कर बैठता है, यथा- अंग्रेजी वाक्य 'please come in' के निम्नलिखित दो अनुवाद किए जाते हैं :

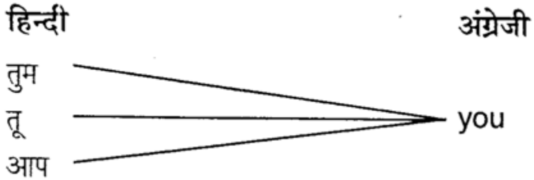
(i) कृपया अन्दर आइए।

(ii) अन्दर आइए।

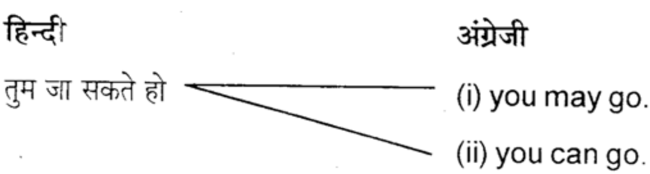
यहाँ प्रथम अनुवाद शाब्दिक है। वास्तव में देखा जाए तो हिन्दी 'आइए' में ही 'please' का भाव समाहित है अतः उसके लिए अलग से 'कृपया' का प्रयोग अनावश्यक है। साथ ही यह हिन्दी भाषा की शैली के अनुरूप भी नहीं है।

व्यतिरेकी दृष्टि से विचार करें तो दो भाषाओं की इकाइयों के मध्य अभिसरण (convergence), पृथक्कीकरण (divergence) और अतिव्याप्ति (overlapping) की स्थिति मिलती है। जब स्रोत भाषा की दो या अधिक इकाइयों के बीच का भेद लक्ष्य भाषा में समाप्त हो जाए तो उस स्थिति को अभिसरण की संज्ञा देते हैं, उदाहरणार्थ हिन्दी में मध्यम पुरुष सर्वनाम के तीन रूप मिलते हैं 'तुम, तू, आप' जबकि अंग्रेजी में तीनों के लिए 'you' का ही प्रयोग होता है।

## मध्यम पुरुष सर्वनाम




पृथक्कीकरण से अभिप्राय उस स्थिति से है जब स्रोत भाषा की किसी एक इकाई के लिए लक्ष्य भाषा में दो या अधिक इकाइयाँ प्राप्त होती है, यथा- हिन्दी 'बर्फ' के लिए अंग्रेजी में 'ice' और 'snow' दो शब्द मिलते हैं। यह स्थिति अन्य स्तरों पर भी देखी जा सकती है, जैसे :



अतिव्याप्ति की दशा में स्रोत एवं लक्ष्य भाषा की कतिपय इकाइयों के मध्य सममानक सम्बन्ध मिलता है। हिन्दी और रूसी मध्यम पुरुष सर्वनाम में यह स्थिति देखी जा सकती है। हिन्दी 'तुम' और 'तू' का रूसी समतुल्य 'ti' होता है जबकि 'तुम' और 'आप' का समतुल्य 'vi' अर्थात् हिन्दी में 'तुम' में रूसी 'ti' और 'vi' सर्वनामों की अतिव्याप्ति है। दो भाषाओं के बीच प्रायः प्रथम दो स्थितियाँ अधिक प्राप्त होती हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण की सहायता से प्राप्त इन तीन स्थितियों का ज्ञान अनुवाद कार्य में प्रत्यक्षतः सहायता देता है।

सम्प्रति, व्यतिरेकी विश्लेषण के अन्तर्गत जो नवीन शोध कार्य हो रहे हैं उनमें गल्तियों/त्रुटियों को लक्ष्य भाषा के प्रतिमान से विचलन माना जा रहा है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है व्यतिरेकी विश्लेषण के आरम्भ एवं उसके विकास के कारण आज अन्य भाषा-शिक्षण, भाषा पाठ्यक्रम नियोजन, शिक्षण-सामग्री निर्माण के साथ-साथ अनुवाद-कार्य के क्षेत्र में नवचिंतन व शोध हो रहा है। भविष्य में जिससे अच्छे परिणामों की अपेक्षा की जा सकती है।

* * *

# हिन्दी-अंग्रेजी की बंधुतावाची शब्दावली का व्यतिरेकी विश्लेषण

प्रत्येक भाषा की संरचना दूसरी भाषा से भिन्न होती है फिर चाहे वह दो स्वतन्त्र भाषाएँ या बोलियाँ हों अथवा किसी एक ही भाषा की भिन्न बोलियाँ अथवा एक बोली के विविध रूप। दोनों की संरचना में एक-दूसरे से जितनी अधिक रूप और व्यवस्थागत भिन्नता होती है उतनी ही अधिक समस्या का सामना अनुवादक या द्वितीय भाषा सीखने वाले को, करना पड़ता है। इन समस्याओं को विवेचित करने के लिए दो भाषा रूपों का समस्त स्तरों - स्वनप्रक्रियात्मक, रूपरचनात्मक, वाक्यीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक और आर्थी आदि पर एककालिक तुलनात्मक अध्ययन व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा किया जाता है।

हर भाषा में भाई-बहन, नाते-रिश्तेदारों के लिए भिन्न शब्द समुच्चय होता है जिसे बंधुतवाची शब्दावली (kinship terms) कहते हैं। किसी भाषा भाषी समुदाय के वक्ता के लिए उसके सगे सम्बन्धियों की यही पहचान बनाते हैं। साधारण भाषा में ये शब्द मात्र एक अस्मिता प्रदान करने वाले प्रतीत होते हैं किन्तु भाषाविद् की दृष्टि में ये अपने सांस्कृतिक संदर्भ से जुड़े ऐसे शब्द हैं जिनका पूर्ण अर्थ ज्ञान सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में ही होता है। प्रस्तुत लेख में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में व्यवहृत बंधुतावाची शब्दावली के उन व्यतिरेक बिन्दुओं का उद्घाटन किया गया है जो इन भाषाओं में कार्य कर रहे अनुवादकों के समक्ष कठिनाई उत्पन्न करते हैं। प्रसिद्ध नृशास्त्री ए.एल. क्रोबर ने विभिन्न भाषाओं में कार्यरत सम्बन्धों/रिश्तों को आठ वर्गों में विभाजित किया :

1. वे भाषाएँ जिनमें समान पीढ़ी और भिन्न पीढ़ी के अन्तर को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह वर्ग अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलता है, उदाहरणार्थ-

अंग्रेजी में पीढ़ी गत भिन्नता दर्शाने के लिए father, grand father और great grand father शब्द मिलते हैं। हिन्दी में भी पिता, बाबा और परबाबा शब्द पीढ़ीगत भिन्नता को दर्शाते हैं। रूपरचनात्मक दृष्टि से हिन्दी के दो शब्द स्वतन्त्र प्रातिपदिक है और 'परबाबा' सामासिक, जबकि अंग्रेजी का एक शब्द (father) स्वतन्त्र है और शेष सामासिक (grand father और great grand father)।

2. कतिपय भाषाओं में समान शाखीय वंशावली (lineal) और भिन्न शाखीय वंशावली सम्बन्धों का अन्तर बना रहता है, यथा- हिन्दी में पिता एवं चाचा तथा अंग्रेजी में father और uncle इस वर्ग में हिन्दी में आयु के अनुसार भिन्नता मिलती है जो अंग्रेजी में दृष्टिगत नहीं होती, जैसे- हिन्दी में 'पिता' के बड़े भाई के लिए 'ताऊ' और छोटे भाई के लिए 'चाचा' का प्रयोग किया जाता है।

3. प्रायः एक ही पीढ़ी में प्राप्त आयु के अन्तर को भी महत्त्व दिया जाता है। यह वर्ग अंग्रेजी में नहीं मिलता यद्यपि दोनों भाषाएं पदबन्धों की सहायता से आयु के अन्तर को द्योतित करती हैं परन्तु ये पदबन्धीय शब्द बन्धुतावाची न होकर सम्बोधन शब्द (address term) के रूप में भाषा में मिलते हैं, जैसे- अंग्रेजी में elder brother और younger brother कहकर अर्थ स्पष्ट किया जाता है तो हिन्दी में 'बड़ा भाई' या 'छोटा भाई' कहकर। इन शब्दों में भी रूपरचनात्मक व्यतिरेक मिलता है जहाँ अंग्रेजी में समान विशेषण भाई और बहन के लिए प्रयुक्त होता है, यथा- elder brother / elder sister वहाँ हिन्दी में विशेषण विकारी है और लिंगानुरूप परिवर्तित होता है :

छोटा भाई / छोटी बहन

बड़ा भाई / छोटी बहन

4. अनेक शब्दों से यह भी सूचना मिलती है कि सम्बन्धी स्त्री है अथवा पुरुष। अंग्रेजी cousin को छोड़ कर समस्त हिन्दी और अंग्रेजी बंधुतावाची शब्द-लिंग के मध्य भेद करते हैं।

5. अनेक नाते रिश्ते वाले शब्द वक्ता के लिंग की भी सूचना देते हैं। यह वर्ग दोनों भाषाओं में नहीं मिलता है।

6. जिस व्यक्ति के माध्यम से सम्बन्ध है उसके लिंग की सूचना मिलती है। अंग्रेजी में इसकी अभिव्यक्ति के लिए पितृवंशी और मातृवंशी शब्द जोड़े जाते हैं, जैसे- maternal aunt या paternal aunt हिन्दी में इनकी अभिव्यक्ति स्वतन्त्र शब्दों द्वारा होती है, जैसे- दादा : दादी या नाना : नानी आदि।

7. विवाह के बाद होने वाले सम्बन्धियों से रक्त सम्बन्धियों को अलग माना जाता है। यह कोटि भी दोनों भाषाओं में कार्यरत मिलती है, उदाहरणार्थ - father और father-in-law तथा 'ससुर' और 'पिता' का अन्तर।

8. कुछ भाषाओं में जिससे सम्बन्ध होता है उस व्यक्ति की अवस्था (मृत/जीवित, विवाहित/अविवाहित) का द्योतन बंधुतावाची शब्द करते हैं। यह कोटि दोनों भाषाओं में नहीं मिलती है। यद्यपि कुछ संबोधन शब्द हैं जो वक्ता की विवाहित अवस्था की सूचना देते हैं, जैसे - विधवा और विधुर।

निम्नांकित तीन तालिकाओं में हिन्दी और अंग्रेजी की बंधुतावाची शब्दावली को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उनके मध्य प्राप्त व्यतिरेक बिंदु स्पष्ट हो स्वयं प्रकाश में आएँ।

## तालिका-1

## प्राथमिक सम्बन्धियों के शब्द

| हिन्दी | अंग्रेजी |
|---|---|
| पिता | father |
| माता | mother |
| बेटा | son |
| बेटी | daughter |
| भाई | brother |
| बहन | sister |
| पति | husband |
| पत्नी | wife |

## तालिका-2

# द्वितीयक सम्बन्धियों के शब्द

### ( ये प्राथमिक सम्बन्धियों के सम्बन्धी होते हैं )

| हिन्दी | अंग्रेजी |
|---|---|
| बाबा, नाना | grand father |
| दादी, नानी | grand mother |
| ताऊ, चाचा, मामा | uncle |
| बुआ, मौसी | aunt |
| भानजा, भतीजा | nephew |
| भानजी, भतीजी | niece |
| पोता, नाती | grand son |
| पोती, नातिन | grand daughter |
| बहू | daughter-in-law |
| दामाद | son-in-law |
| ससुर | father-in-law |
| सास | mother-in-law |

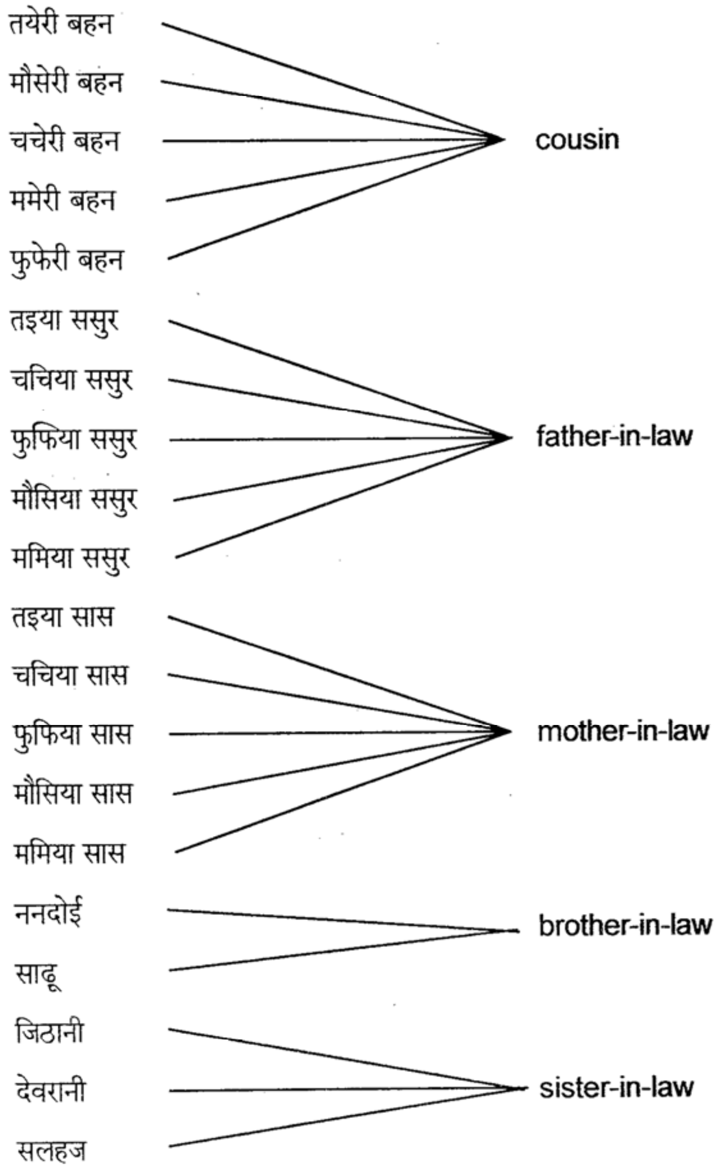
| | |
|---|---|
| जेठ<br>देवर<br>बहनोई<br>साला<br>जीजा | brother-in-law |
| ननद<br>साली<br>भाभी | sister-in-law |

## तालिका-3

## तृतीयक सम्बन्धियों के शब्द

### ( ये हमारे द्वितीयक सम्बन्धियों के सम्बन्धी होते हैं )

| हिन्दी | अंग्रेजी |
|---|---|
| पर बाबा<br>पर नाना | great grand father |
| पर दादी<br>पर नानी | great grand mother |
| फूफा<br>मौसा | uncle |
| तयेरा भाई<br>मौसेरा भाई<br>चचेरा भाई<br>ममेरा भाई<br>फुफेरा भाई | cousin |




उपर्युक्त चर्चा के आधार पर निम्नांकित व्यतिरेक बिन्दु मिलते हैं। हिन्दी की बन्धुतावाची शब्दावली की वर्णनात्मक व्यवस्था (descriptive system)

है जिसमें प्रत्येक शब्द सम्बन्धी विशेष के लिए प्रयोग किया जाता है जबकि अंग्रेजी में कुछ शब्दों को छोड़कर शेष वर्गीकारी व्यवस्था (classificatory system) में मिलते हैं जिनका प्रयोग सम्बन्धी विशेष के लिए न होकर किसी वर्ग के सभी सदस्यों के लिए किया जाता है। तालिका-1 के सभी शब्द लगभग समतुल्य हैं। इसप्रकार के शब्द अनुवादक के कार्य को सरल बनाते हैं। तालिका-1 में आगत शब्द father समध्वन्यात्मक होने के कारण कुछ समस्या उत्पन्न करता है। इस शब्द का प्रयोग 'पादरी' और 'पिता' दोनों अर्थ में किया जाता है, उदाहरण स्वरूप देखें- `I went to meet father' इस वाक्य के दो अनुवाद हो सकते हैं 'मैं पिता से मिलने गया था/गई थी' अथवा 'मैं पादरी से मिलने गया था/गई थी'। इसी प्रकार sister शब्द भी 'बहन' और 'नर्स' दोनों अर्थ की अभिव्यक्ति करने के कारण अनुवाद कार्य में कठिनाई उत्पन्न करता है।

अंग्रेजी शब्दों uncle, aunt एवं cousin का आर्थी-क्षेत्र (semantic field) बहुत विस्तृत है जैसा कि तालिका-2 से स्पष्ट है। इन शब्दों के हिन्दी समतुल्यों का व्यवहार क्षेत्र सीमित है। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय uncle शब्द के लिए सामान्यतः 'चाचा' का प्रयोग किया जाता है किन्तु यहाँ 'मामा, ताऊ, फूफा, मौसा' आदि में से किसी एक का भी प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए पं. श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'पहला पड़ाव' की निम्न पंक्ति देखें 'मामा का चचेरा भाई' (पृ. 14) श्री डेबिड रूबिन ने इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद किया है और उनका अनुवाद 'Opening moves' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें उपर्युक्त पंक्ति का अनुवाद 'uncle's cousin brother' के रूप में किया गया है। सम्भवतः इसी स्थिति से बचने के लिए मासूमा अली जी ने कथाकार शिवानी की कहानी 'कृष्णकली' के अंग्रेजी अनुवाद में 'मामा/मामी' शब्दों का ही प्रयोग किया है।

इसी प्रकार अंग्रेजी का cousin शब्द भी समस्याप्रद है क्योंकि न इसके द्वारा सम्बन्ध स्पष्ट होता है और न ही लिंग, जैसे- My cousin came yesterday का हिन्दी अनुवाद 'मेरा चचेरा/ममेरा/फुफेरा/तयेरा/मौसेरा भाई कल आया था' के साथ-साथ 'मेरी चचेरी/ममेरी/फुफेरी/तयेरी/मौसेरी बहन कल आई थी' भी किया जा सकता है। तालिका-2 में प्राप्त दूसरा व्यतिरेक बिन्दु यह है कि हिन्दी में पत्नी के भाई और पति के भाई को बराबर नहीं माना जाता और भाषा में दोनों के लिए भिन्न-भिन्न शब्द मिलते हैं। साथ ही पति के बड़े और छोटे भाई को भी अलग-अलग

नामों से अभिहित करते हैं। श्री लाल शुक्ल जी के उपन्यास का ही एक अन्य उदाहरण लें-

'शंकरगढ़ जाकर देवर के घर रहे' (पृ. 172) इस पंक्ति का अनुवाद `whether she goes to stay in her brother-in-laws house in Shankargarh' किया गया है। अनूदित पंक्ति यह स्पष्ट करने में असमर्थ है कि brother-in-law जेठ/देवर/ननदोई/बहनोई किस अर्थ में प्रयोग किया गया है जबकि मूलपाठ इस बिन्दु पर पूर्णतः स्पष्ट है और वहाँ 'देवर' कहा गया है। इसी प्रकार की संदिग्धता निम्न पंक्ति के अनुवाद में भी मिलती है। मूलपाठ - 'बहनोई और उसके हाकिम के बीच की झड़प' (पृ. 195) अनूदित पंक्ति - My brother-in-law's difficulties with his boss (पृ. 224)। इसी प्रकार इसी उपन्यास के पृष्ठ 19 में व्यवहृत 'साला' शब्द का अनुवाद भी संदिग्धार्थक है।

इस प्रकार की समस्याओं के निवारण के लिए ही अनुवादक मासूमा अली ने 'I swear `mami' it is true your nephew has gone'. (पृ. 322) वाक्य में 'मामी' शब्द का ही प्रयोग किया है। यद्यपि वाक्य में आगत nephew शब्द भी हिन्दी की दृष्टि से अस्पष्ट है क्योंकि हिन्दी में 'भतीजा और भानजा' दो शब्द मिलते हैं किन्तु अनूदित पंक्ति में किया गया 'मामी' शब्द का लिप्यन्तरण कर `mami' का यथावत प्रयोग अर्थ को स्पष्ट कर देता है। अंग्रेजी में grand son/grand daughter का प्रयोग बेटे के बेटे/बेटी के लिए तथा बेटी के बेटे/बेटी दोनों के लिए किया जाता है जबकि हिन्दी में पोता/पोती और नाती/नातिन अलग-अलग शब्द मिलते हैं अतः अनुवादक के समक्ष प्रश्न उठता है कि किसका चयन करें। यही नहीं हिन्दी में दो वर्गकारी बंधुतावाची शब्द मिलते हैं 'समधी' और 'समधिन' जिनका प्रयोग बेटे अथवा बेटी दोनों के सास-ससुर के लिए किया जाता है।

राबर्ट लेडो ने दो भाषाओं की शब्दावलीगत भिन्नता की तुलना और विश्लेषण के लिए निम्नांकित छह वर्गों की चर्चा की :

## 1. रूप एवं अर्थ में समानता

स्रोत भाषा व लक्ष्य भाषा के जो शब्द ध्वन्यात्मक/लिपिगत एवं अर्थ की दृष्टि से समान होते हैं उनकी गणना इस वर्ग में की जाती है। ये समान मूल अथवा

भिन्न मूल के भी हो सकते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी में कई सजात बन्धुतावाची शब्द मिलते हैं, द्रष्टव्य है :

| **हिन्दी** | **अंग्रेजी** |
|---|---|
| पिता | father |
| माता | mother |
| भाई | brother |

## 2. रूपगत समानता और अर्थगत भिन्नता

अर्थ वैविध्य कई प्रकार का होता है। कभी-कभी शब्दों के अर्थ में आंशिक समानता तो कभी आंशिक भिन्नता मिलती है। इसी प्रकार कई शब्दों में पूर्ण अर्थगत भिन्नता भी दृष्टिगत होती है। प्रायः भिन्न संस्कृति का वक्ता स्रोत भाषा के शब्दार्थ की संकल्पना को निर्धारित नहीं कर पाता है, जैसे- जंगल में रहने वाली आदिम जनजातियाँ सदा अपने मुखिया के रास्ते की रुकावटों को दूर करते हैं अतः बाईबिल में किया गया इस प्रकार का वर्णन कि जनता प्रभु ईशू के रास्ते में फूल पत्तियाँ बिछा रही है, उनके मानस में स्पष्ट नहीं होता और वे इसका दृष्टिगत चित्रण नहीं कर पाते परिणामतः अनुवाद में समस्या आती है। अंग्रेजी अथवा हिन्दी बन्धुतावाची शब्दावली का कोई भी शब्द इस वर्ग में नहीं आता है।

## 3. रूपगत भिन्नता एवं अर्थगत समानता

इस वर्ग के सदस्यों की संख्या बहुत है, जैसे :

| **हिन्दी** | **अंग्रेजी** |
|---|---|
| पत्नी | wife |
| पति | husband |

जब किसी एक भाषा व्यवस्था के शब्दों में रूपगत भिन्नता एवं अर्थगत समानता मिलती है तो उन शब्दों को पर्यायवाची कहते हैं किन्तु भाषा में पूर्ण

पर्यायवाचकता मिलनी कठिन होती है, उदाहरणार्थ - हिन्दी में 'पत्नी' शब्द के पाँच पर्यायवाची मिलते हैं- ''अर्धांगिनी, भार्या, सहधर्मिणी, वामा, वधू'' किन्तु सभी शब्द भिन्न-भिन्न अर्थच्छटाओं वाले हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी में wife शब्द के सात पर्यायवाची मिलते हैं - wedded wife, spouse, help meet, help mate, better half, squaw और matron किन्तु इनमें से कोई भी अर्थ स्तर पर हिन्दी 'वामा' के समतुल्य नहीं कहा जा सकता है। हिन्दी का 'वामा' शब्द हिन्दू संस्कृति से सम्बन्धित है। कोई भी हिन्दू औरत पूजा, हवन आदि करते समय अपने पति के बाँए ओर बैठती है इसीलिए उसे 'वामा' कहते हैं।

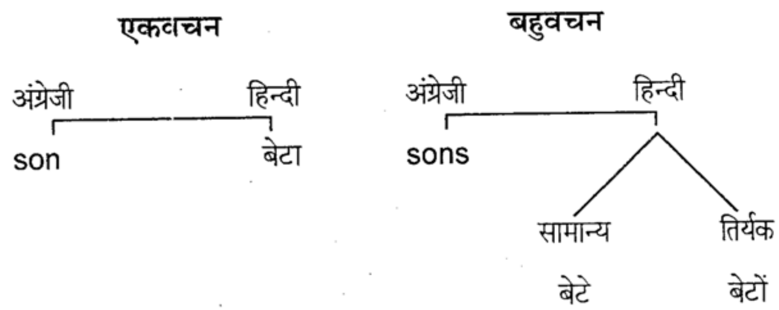
## 4. भिन्न रूप एवं भिन्न अर्थ वाले शब्द

प्रत्येक स्रोत भाषा में अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जो लक्ष्य भाषा से रूप एवं अर्थ की भिन्नता रखते हैं। चूंकि ये शब्द अलग वास्तविकता, सांस्कृतिक विश्वास व परिस्थिति से जुड़े होते हैं अतः लक्ष्य भाषा का वक्ता प्रायः इन्हें पूरी तरह से समझने में समर्थ नहीं होता है। अंग्रेजी शब्दकोश में cousin शब्द का अर्थ दिया गया है `one's brother's or sister's son/daughter' अनुवाद में प्रायः cousin के लिए 'चचेरा भाई' प्रयोग मिलता है। जिसकी अंग्रेजी व्याख्या होगी 'one's younger brother's son'। कई हिन्दी के द्विभाषी वक्ता cousin शब्द का सर्वथा भिन्न लक्ष्यार्थ में प्रयोग करते हैं क्योंकि आज भी भारतीय समाज में लड़के-लड़की की मित्रता को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है अतः प्रायः लड़के या लड़कियाँ अपने गुरूजनों के समक्ष अपने भिन्न लिंगी मित्र का परिचय cousin कहकर करवाते हैं जिसका उद्देश्य सामाजिक स्वीकृति अथवा सामाजिक लांक्षन से बचाव कहा जा सकता है।

## 5. समान रूप और भिन्न रूपरचना/सहप्रयोग वाले शब्द

प्रायः भाषाओं में ऐसे शब्द मिलते हैं जिनमें रूप-अर्थगत समानता तो होती है किन्तु रूपरचनात्मक व्यवस्था एवं सहप्रयोग सम्बन्धी अन्तर मिलता है। लेख के पूर्वार्द्ध में भी इस प्रकार की कई भिन्नताओं की चर्चा की जा चुकी है यहाँ कुछ अन्य अवलोकनीय हैं :

अनेक हिन्दी बन्धुतावाची शब्दों के बहुवचन में दो रूप मिलते हैं : सामान्य और तिर्यक, जैसे-




उदाहरणार्थ :

1. उसके चार बेटे हैं।
2. उसके बेटों ने उसे घड़ी उपहार में दी

प्रत्येक भाषा में मुहावरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और मुहावरे विशिष्ट अर्थ को अरूढ़िगत सहप्रयोग द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। वास्तव में एक मुहावरा शब्दों का ऐसा क्रम होता है जो आर्थी एवं वाक्यीय दृष्टि से सीमित होता है। किसी मुहावरे के सभी पदों का अलग-अलग अर्थ मिल कर भी मुहावरे का अर्थ लक्षित नहीं करता है। वाक्यीय दृष्टिकोण से शब्दों का जो रूप, क्रम आदि मुहावरों में मिलता है वह अन्य भाषिक प्रयोगों से भिन्न होता है परिणामतः मुहावरों का अनुवाद असम्भव है। हिन्दी के मुहावरों 'नानी याद आना, बाप बड़ा न भैय्या सबसे बड़ा रुपैया' आदि में अनुवादपरकता नहीं है।

सहप्रयोग (collocation) की उपकोटि के रूप में पुनरुक्ति की विशेष भूमिका होती है। किसी कोशीय इकाई का पुनः पूर्ण या आंशिक प्रयोग जो नए अर्थ का द्योतन करे, पुनरुक्ति कहलाता है, जैसे :

(क) पूर्ण पुनरुक्ति में दो समान शब्दों का प्रयोग होता है और सम्पूर्ण रचना नवीन अर्थ सृजित करती है, द्रष्टव्य है - भाई-भाई।

(ख) आंशिक पुनरुक्ति में शब्द के आंशिक भाग का स्वनप्रक्रियात्मक अथवा

आर्थी दृष्टि से पुनः प्रयोग किया जाता है, उदाहरणार्थ- माता-वाता, भाई-वाई जैसे प्रतिध्वनि शब्द अथवा भाई-चारा, भाईभतीजावाद जैसे समास इसी वर्ग में आते हैं।

(ग) कभी-कभी दो शब्द साथ में जुड़ कर नवीन अर्थ प्रकट करते हैं। हिन्दी में बन्धुतावाची शब्दावली के कई ऐसे युग्म मिलते हैं,जैसे-जीजा-साली, देवर-भाभी।

## 6. समान मूल एवं भिन्न लक्ष्यार्थ वाले शब्द

भाषा में प्राप्त अनेक शब्द अपने अभिधार्थ से अधिक अर्थ व्यंजित करते हैं, जैसे- 'माता ने दर्शन दिए हैं' वाक्य में माता का अर्थ माँ से नहीं देवि माता है। प्रायः भारतीय गाँवों में चेचक-खसरा जैसे संक्रामक रोगों को 'देवि माता' कहते हैं। इसी प्रकार बम्बइया हिन्दी में 'भाई' शब्द भिन्न लक्ष्यार्थ में प्रयुक्त किया जाता है और ऐसे व्यक्ति को 'भाई' कहते हैं जो असामाजिक कार्यों में लिप्त, ताकतवर व्यक्ति हो।

हिन्दी और अंग्रेजी की बंधुतावाची शब्दावली की उपर्युक्त चर्चा में अनेक ऐसे व्यतिरेक बिन्दुओं की ओर संकेत किया गया है जिनका पूर्व ज्ञान अनुवादक को सजग व सचेत कर देता है और फलतः उसका कार्य सरल, कुशलतापूर्ण एवं अधिक सार्थक हो जाता है। यही नहीं आज इस प्रकार की सूचनाएँ द्वितीय भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भी उपयोगी सिद्ध हो रही हैं और द्विभाषा शिक्षक, शिक्षण सामग्री निर्माण प्रक्रिया में इनसे सहायता लेते हैं क्योंकि दूसरी संस्कृति की भाषा सीखने में बंधुतावाची शब्दावली सरीखे सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शब्द सर्वाधिक समस्या उत्पन्न करते हैं।

***

# हिन्दी-अंग्रेजी की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ

## व्यतिरेकी अध्ययन

मातृभाषा (भा$_1$) की तुलना में द्वितीय भाषा (भा$_2$) अधिगम सदैव भिन्न योग्यता की अपेक्षा रखता है क्योंकि जहाँ मातृभाषा स्वतः बिना प्रयास किए अनजाने ही आ जाती है वहाँ भा$_2$ को सीखना पड़ता है और इसका ज्ञान प्रयास व मेहनत से मिलता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि प्रत्येक भाषा ध्वनि, अर्थ व नियम-व्यवस्था की दृष्टि से दूसरी भाषा से भिन्न होती है अतः भा$_2$ शिक्षण नवीन प्रतीकों, नियम-व्यवस्था को सीखने/जानने का प्रक्रम है। फलतः यदि भा$_1$ और भा$_2$ के भाषिक अभिलक्षणों (ध्वनि, अर्थ व व्यवस्था) में समानता होती है तो द्वितीय भाषा शिक्षण को बढ़ावा मिलता है किन्तु यदि दोनों भाषाओं में अनेक विषमताएँ मिलती हैं तो वक्ता को सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि भाषा$_1$ की संरचना/व्यवस्था भा$_2$ के शिक्षण में बाधा पहुँचाती है। 1957 में राबर्ट लेडो ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक्स अक्रॉस कल्चर्स' में व्यतिरेकी विश्लेषण की चर्चा की। उनके मतानुसार दो भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण, शब्दावली एवं लेखन व्यवस्थाओं की तुलना कर उनकी समानताओं व असमानताओं का उद्घाटन व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाता है। इस तुलना का उद्देश्य दो भाषाओं में विद्यमान ऐसी विषमताओं पर प्रकाश डालना है जो भा$_2$ सीखने वालों के सम्मुख कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। प्रसिद्ध भाषाविद् कार्ल जेम्स के विचारानुसार व्यतिरेकी विश्लेषण का उद्देश्य भाषा की सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करना है जिससे भा$_2$ सीखने वाला जहाँ तक सम्भव हो सके भा$_1$ के व्याघात से अपने आप को बचाते हुए द्वितीय भाषा (भा$_2$) के नियमों को आत्मसात कर सके। स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण भा$_2$ सीखने वालों को पहले से ही भाषा$_1$ की विषमताओं के प्रति सतर्क कर देता है।

किसी भाषा की समस्त अभिव्यक्तियाँ मूलतः सकारात्मक और नकारात्मक- दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं। नकारात्मकता भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है जो भाषा-व्यवस्था में जटिल रूप सी गुथी होती है और भाषा को पूर्ण व समृद्ध बनाती है। ग्रीक दार्शनिकों ने इसे समस्त ब्रह्माण्ड की आत्मा माना है। सामान्यतः नकारात्मकता से एकाधिक आशय लिए जाते हैं - कहीं यह कथन के सम्पूर्ण अर्थ का खण्डन करती है तो कहीं किसी गुण या विशेषता की अनुपस्थिति की सूचना देती है। वहीं कभी-कभी किसी कार्य को मना करने के लिए (निषेधात्मक अर्थ में) भी इसका प्रयोग किया जाता है। साथ ही नकारात्मकता में सदैव सकारात्मकता का पूर्वानुमान रहता है। विविध भाषाएं मुख्यतः इसकी अभिव्यक्ति तीन स्तर पर करती हैं :

1. स्वनप्रक्रियात्मक
2. रूपरचनात्मक
3. वाक्यीय

प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी अंग्रेजी नकारात्मकता के विविध पक्षों का उद्घाटन कर उनकी समानताओं व असमानताओं को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। अंग्रेजी की संरचना पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि यह भाषा no, not, never, nothing, nowhere, none आदि शब्दों के माध्यम से नकारात्मक अभिव्यक्तियों की रचना करती है। प्रायः किसी वस्तु या विषय के विपरीतार्थी भाव के द्योतन के लिए अथवा किसी विषय, वस्तु की अस्तित्त्वहीनता या आकारहीनता के प्रदर्शन के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। वैयाकरणों का मानना है कि अंग्रेजी की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ जटिल एवं विविधतापूर्ण होती हैं। उपरिवर्णित शब्दों के अतिरिक्त प्रत्यय संयोजन द्वारा भी अंग्रेजी में नकारार्थकों का निर्माण होता है, उदाहरण स्वरूप देखें- अंग्रेजी में /in/ /un-/ और /a~an/ तीन पूर्व प्रत्यय मिलते हैं जिनमें से /un-/ सर्वाधिक प्रचलित नकारात्मक पूर्व प्रत्यय है जिसका प्रयोग विशेषण, क्रियाविशेषण ही नहीं बल्कि क्रियाओं में भी मिलता है :

| | |
|---|---|
| **विशेषण** | unhealthy, unkind, unknown |
| **क्रिया विशेषण** | ungodly, unknowingly, unwisely |
| **क्रिया** | unfold, undo, unwind |

ध्यान दें कि अंग्रेजी में प्रायः विशेषण, क्रिया विशेषण आदि में प्रत्यय संयुक्त होने पर शब्द उसी पदवर्ग में रहता है (जैसे- do - undo क्रिया) किन्तु सदैव ऐसा नहीं होता और कभी-कभी नकारात्मक प्रत्यय संयोजन शब्द के पदवर्ग में परिवर्तन भी कर देता है (जैसे- place संज्ञाः displace क्रिया)। अंग्रेजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण नकारात्मक प्रत्यय /in-/ है जिसके तीन सहरूप (allomorph) /il-~ir-~im-/ मिलते हैं, यथा indespensible, illegal, imperfect, irresponsible आदि। अंग्रेजी के नकारात्मक पूर्व प्रत्यय /a-/ /an-/ ग्रीक से आगत हैं और उनका प्रयोग स्वर अथवा 'h' ध्वनि के पूर्व किया जाता है, उदाहरणार्थ- asyntactic, atheism इत्यादि। इनके अतिरिक्त non-, dis-, mal-, आदि प्रत्यय भी नकारात्मकता, विरोध, न होने का भाव प्रकट करते हैं, दृष्टव्य है :

| | |
|---|---|
| productive | non productive |
| comfort | discomfort |
| toxidant | antitoxidant |
| adjusted | maladjusted |

अंग्रेजी की नकारात्मक अभिव्यक्ति का निर्माण करने वाला एकमात्र पर प्रत्यय /-less/ है जो /-full/ के विपरीतार्थी के रूप में प्रयुक्त मिलता है (जैसे- shameless, harmless आदि)।

जहाँ रूपरचनात्मक स्तर पर नकारात्मकता उपरिवर्णित प्रत्ययों द्वारा लक्षित होती है वहाँ वाक्यीय स्तर पर इसका प्रतिरूपण निपात द्वारा होता है, उदाहरणार्थ :

1. He is my friend.
   He is not my friend.
2. Everything was good.
   Nothing was good.

इसीप्रकार कतिपय स्वतन्त्र शब्द - hardly, doubt, unable, too, rarely भी नकारात्मकता व्यक्त करते हैं।

1. I hardly go there.
2. I was unable to go there.

3. I rarely go there.

4. I doubted that I would go there.

संकुचित रूपों (contracted forms) यथा- don't, isn't, didn't का प्रयोग अंग्रेजी की अपनी विशेषता है। संकुचित रूप लिखित भाषा में तो भिन्नता रखते ही हैं इनका उच्चारण भी भिन्नता प्रकट है। प्रायः इनका प्रयोग बद्ध प्रश्नों (tag questions) के अन्त में किया जाता है, जैसे- He is intelligent, isn't he ?

जेस्पर्सन ने अपने अध्ययन में अंग्रेजी नकारात्मकता का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया और इसके पाँच वर्गों की चर्चा की :

**1. वाक्यगत नकारात्मकता (sentence negation)**

इसमें उद्देश्य व विधेय का सम्पूर्ण संयोग नकारात्मक होता है तथा निषेधात्मक तत्त्व असमापिका क्रिया के पास रखा जाता है।

**2. शब्दगत नकारात्मकता (word negation)**

जब वाक्य के किसी अंश द्वारा नकारात्मकता प्रकट की जाए। इसकी अभिव्यक्ति निपात द्वारा (not happy) या प्रत्यय संयोजन द्वारा (unhappy) होती है।

**3. पुनुरुक्त नकारात्मकता (presumptive negation)**

जब नकारात्मक अभिव्यक्ति के घटित होने के बाद पुनः किसी तरह का नकारात्मक रूप जोड़ा जाए। इसका उद्देश्य नकारात्मकता पर बल देना होता है। अंग्रेजी का उदाहरण देखें- I wouldn't let you touch me, nor if I was starving.

**4. संयोजकविहीन समन्वित नकारात्मकता (paratactic negation)**

जब किसी नकारार्थक रूप का आश्रित उपवाक्य में नकारात्मकता संकेतित करने वाली क्रियाओं जैसे- deny, forbid, hinder इत्यादि के साथ प्रयोग किया जाए। इस उपवाक्य को स्वतन्त्र वाक्य की भाँति माना जाता है, यथा :

What hinders in your own instance that you do not return to those habits.

### 5. द्विगुण नकारात्मकता (double negation)

अंग्रेजी के समान उपवाक्य में यद्यपि दो नकारार्थक रूपों का प्रयोग मान्य नहीं है तथापि बोलचाल की भाषा में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं :

This is not uncommon.

अंग्रेजी में स्वनप्रक्रियात्मक स्तर पर नकारात्मक वाक्यों की बलाघात एवं अनुतान व्यवस्था सकारात्मक वाक्यों से स्पष्टरूपेण भिन्नता रखती है। नकारात्मक निपात no तथा none सदैव बलाघातित होते हैं, यथा :

1. There's 'no doubt about that.

2. 'None of them were ready.

यदि वाक्य में बलाघात वाले शब्द के पास नकारात्मक निपात आता है तो उस पर गौण बालाघात होता है और कतिपय उदाहरणों में वह बलाघातहीन भी हो जाता है। नकारार्थक रूप प्रश्नवाचक और कथन दोनों ही स्थितियों में बलाघात युक्त होते हैं-

1. He 'doesn't like them.

2. 'Can't she wait for me.

किन्तु ये रूप उच्च बलाघात वाले शब्दों के पास आने पर बलाघात हीन हो जाते हैं, यथा :

But I don't "want to go.

इनके अतिरिक्त भाषा में प्रयुक्त विविध तान (tones) भी विशिष्ट भाव और अर्थ व्यक्त करते हैं। यदि किसी प्रश्न में उच्च तान का प्रयोग किया जाए तो उससे आश्चर्य व विस्मय का भाव द्योतित होता है, उदाहरणार्थ- weren't you told about it ? यद्यपि अंग्रेजी तान-प्रधान भाषा नहीं है तथापि इसमें भावों व मानसिक स्थिति के प्रकटीकरण के लिए भिन्न - भिन्न तानों व बलाघात का प्रयोग किया जाता है।

हिन्दी भाषा की संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण इस तथ्य का संकेतक है कि अंग्रेजी की तुलना में इसकी नकारात्मक व्यवस्था सुगम व सरल है। रूपरचनात्मक एवं वाक्यीय दोनों ही स्तरों पर इसका सीमित प्रयोग मिलता है। हिन्दी में तीन शब्दों

'नहीं, न और मत' द्वारा नकारात्मकता अभिव्यक्त होती है। इनमें से 'नहीं और न' अस्वीकृति व्यक्त करने के प्रमुख साधन हैं। यद्यपि इनका प्रकार्य एक ही है तथापि इनके प्रयोग में अन्तर है। 'नहीं' निपात का प्रयोग वास्तविक माने जाने वाले व्यापारों और तथ्यों की अस्वीकृति के लिए होता है। इसका प्रयोग निश्चयार्थक वर्तमान व भूतकाल में अधिक किया जाता है, उदाहरण स्वरूप देखें :

1. मेरे पास पैसे नहीं हैं।

2. तुम नहीं गए उसके साथ?

अस्वीकृति को अधिक सशक्त बनाने के लिए 'नहीं' का प्रयोग विश्लिष्ट क्रिया रूप के घटकों के बीच किया जाता है, यथा :

1. तुम पुस्तक पढ़ते नहीं हो।

2. वह बाजार जा नहीं रहा है।

कभी-कभी 'नहीं' का प्रयोग विरोधबोधक संबंध व्यक्त करने के लिए भी होता है, जैसे :

1. तुम इन्सान नहीं फरिश्ता हो।

2. मैं चाय नहीं कॉफी पीऊँगा।

इस निपात का प्रयोग समुच्चयबोधक 'नहीं - न' के घटक के रूप में भी मिलता है, उदाहरणार्थ :

मोहिनी ने जवाब नहीं दिया और न ही उसने गाड़ी धीमी की।

हिन्दी का 'न' नकारार्थक निपात सामान्य वर्तमान, अपूर्णभूत और आसन्नभूत कालों को छोड़कर बहुधा अन्य कालों में आता है जैसे- राम कलकत्ते न जाए तो अच्छा रहेगा। कभी-कभी इसका प्रयोग तृतीय क्रियाविशेषण कृदन्त के साथ साधारण वाक्य में विरोधबोधक सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए होता है, यथा- यमुना कुर्सी पर न बैठ फर्श पर ही बैठ गई है।

हिन्दी के तृतीय निषेधार्थक निपात 'मत' का प्रयोग केवल आज्ञार्थक प्रकार के रूपों तथा इनके अर्थ में प्रयुक्त तुमर्थ के साथ दृढ़ निषेध व्यक्त करने के लिए होता है। यह निपात क्रिया - रूप से पूर्व या उसके पश्चात दोनों ही स्थितियों में आ

सकता है, यथा :

1. बहुत जोर से मत पीटा करो।

2. मुझे छोड़ना मत।

'मत' के स्थान पर 'न' के प्रयोग से निषेध में कुछ शिथिलता का आभास मिलता है, जैसे :

1. तुम मत जाओ।

2. तुम न जाओ।

पं. किशोरी दास बाजपेयी के मतानुसार, ''न साधारण निषेध है और नहीं दृढ़ता के साथ। 'शेर अन्न नहीं खाता है' निश्चय है। परन्तु 'राम कलकत्ते न जाए तो अच्छा' यहाँ क्रिया की निष्पत्ति निश्चित नहीं है। साधारणतः सिद्ध क्रिया के साथ 'नहीं' और साध्य के साथ 'न' आता है।''

इन तीन निपातों के अतिरिक्त हिन्दी में भी पूर्व और पर प्रत्यय संयोजन द्वारा, नवीन रूप की रचना कर, नकारात्मकता व्यक्त होती है। हिन्दी के ज्यादातर प्रत्यय संस्कृत से आए हैं। इन प्रत्ययों के संयोजन से प्रायः शब्द के पदवर्ग में परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् जिस पदवर्ग में मूल शब्द था उसी में नकारात्मक शब्द भी रहता है, जैसे :

काल (संज्ञा) अकाल (संज्ञा)

कहीं-कहीं विकल्प से पदवर्ग परिवर्तन भी मिलता है :

चेत (संज्ञा) अचेत (विशेषण)

संस्कृत से आए नकारात्मक प्रत्ययों (दुर् - दुर्दशा, दुराचार, दुर्जन, अप - अपकर्ष, अपमान, अपशब्द, वि - विदेश, विधवा, विसंगति) के अतिरिक्त हिन्दी में कई अरबी फारसी प्रत्यय भी प्रचलित हैं, जैसे- /बे-/बेदर्द, /बद-/बदनाम आदि।

कतिपय हिन्दी वैयाकरण वास्तविक (true) व छद्म (pseudo) नकारार्थकों का उल्लेख करते हैं। जब किसी प्रतिज्ञप्ति के अस्तित्व को नकारा जाए तो

उसे वास्तविक की संज्ञा दी जाती है और जब सकारात्मक अभिव्यक्ति को नकारने के साथ-साथ उसका विरोध भी किया जाए तो उसे छद्म की संज्ञा दी जाती है, ये नकारार्थक विरोधाभासी और विलोम होते हैं यथा :

मान : अपमान

थाह : अथाह

वास्तविक नकारार्थक के उदाहरण हैं और

धर्म : अधर्म

को छद्म का उदाहरण कहा जा सकता है।

कभी-कभी बोलचाल की भाषा में अनुतान (intonation) वाक्य को नकारात्मक बना देता है, जैसे 'क्या मैं तुम्हें भूल सकती हूँ?'। साथ ही कई स्वतन्त्र शब्द जैसे- 'बिना, खाली, हीन, रहित' भी नकारात्मकता व्यक्त करते हैं।

हिन्दी वाक्य में नकारात्मक निपात का स्थान प्रायः क्रिया के पूर्व होता है, यथा :

मैं नहीं जाऊँगा।

वह नहीं पढ़ता है।

प्रश्नवाचक वाक्य में इन्हें कर्ता के बाद रखा जाता है, जैसे-

क्या मैं नहीं जाऊँगा ?

हिन्दी में कभी-कभी सहमति व्यक्त करने के लिए प्रश्नवाचक वाक्य के अन्त में 'न' का प्रयोग किया जाता है, जैसे :

आप मेरे घर आएगे न ?

किन्तु यह 'न' समध्वन्यात्मक होते हुए भी व्याकरणिक दृष्टि से भिन्न हैं।

हिन्दी और अंग्रेजी नकारार्थकों का विवेचन इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि जहाँ अंग्रेजी में नकारात्मक रूपों की संख्या ज्यादा और उनकी व्यवस्था जटिल है वहीं हिन्दी से मात्र तीन निपात हैं और उनकी व्यवस्था सरल है।

रूपरचनात्मक स्तर पर दोनों ही भाषाएँ व्युत्पादी प्रत्यय जोड़ कर नए शब्दों का निर्माण करती हैं। संकुचित रूप और द्विगुणी नकारात्मकता की विशेषता हिन्दी में नहीं देखने को मिलती। पदक्रम की दृष्टि से दोनों में समानता दृष्टिगत होती है और नकारार्थक रूप क्रिया के पूर्व रखे जाते हैं। स्पष्ट है कि थोड़े अभ्यास व लगन से काम करने पर अंग्रेजी वक्ता उपरिवर्णित हिन्दी नकारात्मक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को सरलता से सीखने में समर्थ होगा।

* * *

# हिन्दी-अंग्रेजी की लिंग व्यवस्था
## व्यतिरेकी अध्ययन

भाषा की व्याकरणिक कोटियों में लिंग की कोटि का बहुत महत्त्व है। संज्ञा की अन्य कोटियों, जैसे- वचन, कारक आदि की तुलना में लिंग की कोटि मूलभूत मानी जाती है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से लिंग से तात्पर्य 'व्याकरणिक/शब्दगत लिंग' से लिया जाता है जिसे फोडोर, जेस्पर्सन आदि विद्वानों ने 'संदर्भ रहित अर्थहीन भाषिक रूप' कहकर परिभाषित किया। देखा जाय तो यह परिभाषा भारोपीय परिवार की उन भाषाओं के लिए ही अधिक सार्थक है जहाँ व्याकरणिक चिह्नकों का प्रयोग पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग वर्ग में भेद स्थापित करने के लिए किया जाता है। लोक व्यवहार की दृष्टि से लिंग का तात्पर्य है 'किसी वस्तु या उपादान का लिंग (sex) जो नर या मादा हो सकता है।' इसे प्रायः सान्दर्भिक, लौकिक या सरल शब्दों में 'वस्तुगत लिंग' भी कहते हैं। स्पष्ट है कि वस्तु जगत या दृश्य जगत में लिंग की जो संकल्पना है वह भाषा या व्याकरण में अभिहित लिंग से भिन्न है, जहाँ पहले को वस्तुगत लिंग/लौकिक लिंग कहते हैं वहाँ दूसरे को व्याकरणिक/शब्दगत लिंग। भाषावैज्ञानिक सैद्धान्तिक अध्ययनों में लैंगिकता सम्बन्धी दो विचारधाराएं मिलती हैं। कतिपय विद्वानों का मत है कि मानव की सदैव यह चेष्टा रही है कि वह अपने चतुर्दिक प्राप्त वस्तुओं के लिंग में अन्तर स्थापित करे। परिणामतः भाषाओं में संज्ञा शब्दों के लिए स्त्री व पुरुष वर्ग/कोटि के रूप में यह भिन्नता सदैव विद्यमान रही है। बाद में यह विशेषता मानवतेर प्राणियों पर भी लागू की गयी और व्याकरणिक नपुंसक लिंग की कोटि के अन्तर्गत उन अवधारणाओं की चर्चा की जाती है जिनका वस्तु के लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। दूसरी विचारधारा वाले विद्वानों ने व्याकरणिक लिंग को वस्तुगत लिंग से भिन्न प्रतिपादित किया। उनके मतानुसार संज्ञा को स्त्रीलिंग और

पुल्लिंग में विभाजित करने का यह अर्थ नहीं है कि हम वस्तु के लिंग की ओर संकेत कर रहे हैं, जैसे जर्मन या फ्रेंच भाषा में ऐसे संज्ञा शब्द जिनका वस्तुगत लिंग नर है, के साथ प्रायः स्त्रीलिंग या नपुंसक लिंग के चिह्नक लगते हैं और जर्मन में der, die और das लिंग सूचक पद प्रयोग किए जाते हैं, जैसे- dertisch- मेज (पुल्लिंग), die tur- दरवाजा (स्त्रीलिंग) तथा das feur- आग (नपुसंक लिंग) प्रयोग मिलते हैं और यदि कहीं वस्तुगत लिंग और शब्दगत लिंग में सम्बन्ध मिलता है तो मात्र सांयोगिक है। इन्हीं भाषाओं में व्याकरणिक लिंग चिह्नकों को संदर्भ रहित अर्थहीन भाषिक रूप माना गया है।

वास्तव में यह सम्पूर्ण संसार चेतन और अचेतन या जड़ पदार्थ में विभाजित किया जा सकता है। चेतन पदार्थों को स्थिर (पेड़-पौधे) एवं गतिशील (मनुष्य, पशु-पक्षी) इन दो वर्गों में पुनः विभाजित किया जा सकता है। जड़ स्थिर पदार्थ में पत्थर, किताब, छाता आदि शब्दों की गणना होती है और गतिशील प्राणियों को मानव (आदमी, लड़का) तथा मानवेतर (हाथी, कुत्ता) में विभाजित करते हैं। लैंगिकता के आधार पर इन्हें क्रमशः पुरुष-स्त्री और नर-मादा में बाँटा जाता है। इस प्रकार का विभाजन वस्तुगत लिंग से सम्बन्धित है। भाषा में लिंग की संकल्पना शब्दगत धर्म से सम्बन्ध रखती है वहाँ लिंग, शब्द का धर्म होता है वस्तु का नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शब्दगत लिंग और वस्तुगत लिंग में एकैक भाव की स्थापना नहीं की जा सकती है।जो वक्ता दोनों में पूर्णरूपेण अनुरूपता मानते हैं उन्हें भाषा की लिंग व्यवस्था जटिल प्रतीत होती है। चूंकि प्रत्येक भाषा की संरचना दूसरे से भिन्न होती है और हर भाषा की लिंग व्यवस्था भी उसकी अपनी होती है अतः द्वितीय भाषा शिक्षण के समय इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास यद्यपि संस्कृत से हुआ है परन्तु दोनों की लिंग व्यवस्था में पर्याप्त भिन्नता है। संस्कृत में लिंग का निर्धारण शब्द के अर्थ के आधार पर न होकर प्रायः शब्द के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय के आधार पर होता है। यही कारण है कि कई स्त्री बोधक शब्द भी स्त्रीलिंग नहीं माने जाते जैसे- संस्कृत में 'दार' एवं 'कलत्र' दोनों स्त्री बोधक शब्द हैं दोनों का अर्थ है 'पत्नी' अर्थात् जैविक/लौकिक दृष्टि से शब्द स्त्रीलिंग के हैं लेकिन संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'दार' पुल्लिंग में है तो 'कलत्र' नपुसंकलिंग में है। हिन्दी में प्रायः समस्त प्राणिवाचक वस्तुओं को लौकिक लिंग के अनुरूप विभाजित किया जाता है तथा अचेतन वस्तुओं को प्रयोग अथवा

परम्परा के आधार पर स्त्रीलिंग या पुल्लिंग माना जाता है, यथा-'किताब' स्त्रीलिंग में है तो 'पंखा' पुल्लिंग में। आजकल हिन्दी में कतिपय शब्दों को उभय लिंगी बना दिया गया है जबकि पूर्व में इनके स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग में भिन्न-भिन्न रूप प्रचलित थे, उदाहरण स्वरूप देखें :

| **उभय लिंगी रूप** | **पूर्व प्रचलित स्त्रीलिंग रूप** |
|---|---|
| मंत्री | मंत्राणी |
| विद्वान | विदुषी |
| प्रधानाचार्य | प्रधानाचार्या |

यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कभी-कभी एक ही अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों (समानार्थक शब्द) में एक पुल्लिंग में होता है तो दूसरा स्त्रीलिंग में, जैसे :

ग्रंथ (पुल्लिंग) और किताब (स्त्रीलिंग)

रास्ता (पुल्लिंग) और सड़क (स्त्रीलिंग)

साथ ही हिन्दी में भाववाचक या अमूर्त संज्ञाओं में भी लिंग भेद मिलता है, द्रष्टव्य है :

| **पुल्लिंग** | **स्त्रीलिंग** |
|---|---|
| गुस्सा, प्यार | दया, ममता |
| डर, प्रलोभन | वेदना, गरीबी |

यह विशेषता समानार्थक भाववाचक शब्दों में भी मिलती है, जैसे :

| **पुल्लिंग** | **स्त्रीलिंग** |
|---|---|
| विवाह | शादी |
| इम्तहान | परीक्षा |
| प्रेम | मोहब्बत |
| इंतजार | प्रतीक्षा |

कभी-कभी दृश्य जगत के अप्राणीवाचक वस्तु के आकार प्रकार के आधार पर भी लिंग निर्धारण किया जाता है, जैसे :

हिन्दी- बड़े आकार की वस्तु-पुल्लिंग (रस्सा, कटोरा, आम)

छोटे आकार की वस्तु-स्त्रीलिंग (रस्सी, कटोरी, अमिया)

शब्द स्तर पर हिन्दी संज्ञाओं में मुख्यतः तीन विधियों द्वारा लिंग निरूपण किया जाता है :

1. अन्त्य प्रत्यय संयोजन द्वारा

(क) हिन्दी में पुलिंग सूचक संज्ञाओं का अन्तिम - आ - ई में परिवर्तित हो जाता है, यथा :

| | | |
|---|---|---|
| लड़का | - | लड़की |
| बेटा | - | बेटी |

(ख) अन्तिम ध्वनि - आ अथवा - वा होने पर -ईया में परिवर्तन मिलता है, जैसे :

| | | |
|---|---|---|
| चूहा | - | चुहिया |

(ग) जाति, व्यवसाय अथवा समुदाय को सूचित करने वाली पुलिंग संज्ञाओं के स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए अन्तिम स्वर के स्थान पर - इन प्रत्यय लगता है, जैसे :

| | | |
|---|---|---|
| लुहार | - | लुहारिन |
| धोबी | - | धोबिन |
| पण्डा | - | पण्डाइन |

(घ) इनके अतिरिक्त -आनी प्रत्यय भी मिलता है, यथा :

| | | |
|---|---|---|
| ठाकुर | - | ठकुरानी |
| देवर | - | देवरानी |

2. प्रातिपदिक के पूर्व स्वतन्त्र शब्द संयोजन द्वारा भी लिंग निर्धारण किया जाता है, द्रष्टव्य है :

नर भेड़ - मादा भेड़

नर भेड़िया - मादा भेड़िया

3. कभी - कभी भिन्न प्रातिपदिक से बने शब्दों द्वारा स्त्रीलिंग का भेद अभिव्यक्त होता है, जैसे :

माँ - बाप

वधू - वर

हिन्दी में स्यात् भविष्यत् (contingent future) और आज्ञार्थक को छोड़कर क्रिया के स्तर पर सभी कालों में लिंग की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार पुल्लिंग संज्ञा की अन्तिम ध्वनि प्रायः -आ होती है उसी प्रकार क्रिया में भी - आ प्रत्यय मिलता है (लाता, जाता, खाता) और -ई प्रत्यय स्त्रीलिंग का सूचक होता है (जाती, लाती, खाती)। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी क्रिया का लिंग निर्धारण वाक्य के कर्ता और कर्म के अनुरूप होता है। कर्तृ सम्बन्धी रचनाओं में क्रिया और कर्ता में लिंग की अन्विति मिलती है, यथा :

सीता स्कूल जाती है।

राम स्कूल जाता है।

कर्म सम्बन्धी रचनाओं में क्रिया और कर्म में अन्विति मिलती है, उदाहरणार्थ :

लड़के ने किताब पढ़ी।

लड़की ने किताब पढ़ी।

निर्विशेषक रचनाओं में क्रिया न कर्ता और न ही कर्म से अन्विति प्रदर्शित करती है वरन् सदैव अन्य पुरुष एक वचन पुल्लिंग में ही रहती है, जैसे :

लड़कों ने शेर को देखा।

लड़कियों ने शेर को देखा।

लड़कों ने शेरनी को देखा।

लड़कियों ने शेरनी को देखा।

हिन्दी में यद्यपि विशेषण पदवर्ग के लिए भी लिंग निर्धारण के कतिपय रूप-वाक्यीय नियम मिलते हैं तथापि इनमें निश्चितता नहीं होती और प्रायः विकारी विशेषण प्रधान संज्ञा के अनुरूप लिंग धारण करते हैं। विशेषण लिंग निर्धारण के कतिपय नियम निम्नांकित हैं :

1. स्त्रीलिंग संज्ञा की विशेषता बताते समय विकारी विशेषण का आ > ई में परिवर्तित हो जाता है, उदाहरणार्थ :

    बड़ा > बड़ी

    लम्बा > लम्बी

2. पुल्लिंग तिर्यक संज्ञा की विशेषता बताने के लिए आ >ए में परिवर्तित होता है:

    अच्छा > अच्छे

    छोटा > छोटे

इन नियमों के अपवाद भी मिलते हैं।

हिन्दी का 'सा' निपात सम्बन्धित संज्ञा/अथवा सर्वनाम से अन्वित रहता है और तदनुसार रूप बदलता है, जैसे :

हाथी सा शरीर

पत्थर से कड़े

उसका सा दोस्त

उसकी सी नाक

हिन्दी परसर्गों में केवल 'का' लिंग के अनुरूप रूप परिवर्तित करता है और तत्सम्बन्धी संज्ञा से इसका अन्वय होता है, उदाहरण के लिए :

राम की बहन

सोने का कड़ा

बच्चे के हाथ

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिन्दी में वाक्य में आगत विकारी विशेषण (मोटा : मोटी) क्रमवाचक संख्या शब्द (पहला/पहली), सम्बन्ध वाचक सर्वनाम (तुम्हारा/तुम्हारी), कृदन्त (हँसता/हँसती), क्रिया के पुरुष नियत रूप (आएगा/आएगी), परसर्ग 'का' (का/की) तथा निपात 'सा' (कड़ुवा सा/कड़ुवी सी) लिंग के अनुसार अपना रूप बदलते हैं और तत्सम्बन्धी संज्ञा से उनका अन्वय होता है।

अंग्रेजी लिंग व्यवस्था हिन्दी की भाँति समृद्ध व विकसित नहीं है। अंग्रेजी मुख्यतः लौकिक/वस्तुगत लिंग वाली भाषा है और इसमें लिंग का प्रचलित रूप में त्रिवर्गीय अन्यथा चतुवर्गीय विभाजन मिलता है, जैसे- masculine, feminine, neuter, common। इस चौथे वर्ग - 'उभयलिंग' में friend, child, enemy आदि शब्दों की गणना की जाती है। अंग्रेजी संज्ञा का लिंग उसको स्थानापत्र करने वाले सर्वनाम (he, she, it) के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है। ये अन्य पुरुष सर्वनाम ही अंग्रेजी में व्याकरणिक/शब्दगत लिंग के एकमात्र उदाहरण हैं। अपने व्याकरणिक प्रकार्य के अतिरिक्त ये किसी वस्तु या उपादान को स्त्री, पुरुष अथवा अचिह्नित अवस्था में नपुंसक वर्ग में रखते हैं। इसप्रकार अर्थगत भिन्नता के साथ साथ व्याकरणिक अन्तर भी मिलता है जो पुरुषवाचक सर्वनाम तथा सम्बन्धसूचक सर्वनाम द्वारा निर्धारित होता है, जैसे- he/she के साथ who/that और it के साथ which/that आता है। कभी कभी संख्या द्वारा भी इनका निर्धारण होता है, यथा- he/she/it के साथ goes (non plural) क्रिया और they के साथ go (plural) क्रिया आती है। निम्नतालिका इस सम्बन्ध को और अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है :

| | पुरुष सूचक सर्वनाम | सम्बन्ध वाचक सर्वनाम | संज्ञा |
|---|---|---|---|
| भेदक | he | who | boy, man |
| | she | who | girl, woman |
| | it | which | table, bread |
| | it/he | which | lion, dog |
| | it/she | which | cat, sparrow |
| अभेदक | he/she | who | doctor, friend |
| | he/she/it | who/which | child, baby |

अंग्रेजी व्याकरण में लिंग निर्धारण की चार विधियाँ मिलती हैं :

1. रूपरचनात्मक परिवर्तन द्वारा

(क) अन्त्य प्रत्यय संयोजन द्वारा

duke - duchess

(ख) अन्तिम स्वर लुप्त कर - ess संयोजन द्वारा

prince - princess

(ग) अनियमित रूप से - ess जोड़ कर

governor - governess

2. स्वतन्त्र प्रातिपदिक द्वारा

male servant - maid nurse

male nurse - female nurse

3. नवीन प्रातिपादिक द्वारा

boy-girl

son-daughter

4. अपवाद रूप

hero - heroine

lad - lass

ध्यान रहे कि संज्ञा व सर्वनाम के अतिरिक्त अन्य अंग्रेजी पद वर्ग लिंग द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि लिंग व्यवस्था की दृष्टि से अँग्रेजी भाषा हिन्दी से बहुत भिन्न है। हिन्दी में लिंग अन्विति की रूपरचना व वाक्य रचना दोनों स्तरों पर कार्यरत रहती है। लिंग का रूपरचनात्मक कार्य संज्ञा तक सीमित रहता है जब कि वाक्य रचनात्मक स्तर पर लिंग व्याकरणिक चिह्नक के रूप में क्रिया और विशेषण से भी अन्विति प्रदर्शित करता है।

अंग्रेजी में लिंग सर्वनाम द्वारा निर्धारित होता है और इसकी मात्र रूपरचनात्मक महत्ता होती है।दोनों भाषाएं न केवल वर्गों की संख्या की दृष्टि से (हिन्दी में लिंग के दो वर्ग और अंग्रेजी में चार वर्ग) विषमता रखती हैं वरन् प्रतिरूपण में भी अन्तर मिलता है। यदि किञ्चित्समानता मिलती है तो लिंग निर्माण की प्रक्रिया में। हिन्दी में अचेतन वस्तुओं का लिंग निर्धारण परम्परा और प्रयोग पर निर्भर करता है जब कि अंग्रेजी में इन्हें एक अलग वर्ग (नपुंसक लिंग) में रखते हैं। आधुनिक अंग्रेजी में भी इसमें परिवर्तन आ रहा है और आज वक्ता अचेतन वस्तुओं, उपादानों के लिए he/she का प्रयोग कर रहे हैं। दोनों भाषाओं में दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यतिरेकी बिन्दु यह है कि हिन्दी में सर्वनाम वर्ग पूर्णतः लिंग से अछूता रहता है जबकि अंग्रेजी का यही पदवर्ग लिंग से सर्वाधिक प्रभावित है। वस्तुतः हिन्दी में लिंग की आन्तरिक कोटि संज्ञा प्रातिपदिक से आबद्ध, स्थिर व प्रसंग निरपेक्ष है। जिसका निर्धारण रूढ़ि या प्रयोग से होता है। इसको भली भाँति जानने के लिए लोक प्रयोग तथा अभ्यास की आवश्यकता होती है और वक्ता बारम्बार के अभ्यास से समस्याओं का समाधान कर सकता है।

❊ ❊ ❊

# हिन्दी-अंग्रेजी वचन व्यवस्था
## व्यतिरेकी विश्लेषण

व्याकरणिक कोटियाँ भाषा विशेष में प्राप्त अन्तर्पदवर्गीय सम्बन्धों का द्योतन करती हैं तथा प्रत्येक भाषा संरचना में उनका विशिष्ट स्वरूप एवं स्थान होता है। भाषा की अपनी संरचनानुसार ही किसी भाषा की व्याकरणिक कोटि का प्रकार्य निर्दिष्ट होता है। कोई भी कोटि सार्वभाषिक नहीं होती। यही नहीं दो भाषाओं में समान कोटि होने पर भी उसके प्रकटीकरण के स्तर पर भिन्नता प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ लिंग की कोटि हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में मिलती है किन्तु जहाँ अंग्रेजी के सर्वनाम लिंग से प्रभावित होते हैं (he, she, it) वहाँ हिन्दी में स्थिति भिन्न है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं में वचन की व्याकरणिक कोटि की समीक्षा कर उनके मध्य प्राप्त विषमताओं को रेखांकित करने के साथ-साथ इन असमानताओं के कारण अनुवाद में आगत समस्याओं का निरूपण करना है। सभी भाषाओं की संख्या संकेतक व्यवस्था अर्थात् वचन संरचना समानान्तर नहीं होती है, यथा- संस्कृत क्रिया रूप 'पठति, पठतः, पठन्ति' वर्तमान काल के अतिरिक्त कर्ता की संख्या की भी सूचना देते हैं। यदि इन रूपों को हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनूदित करना हो तो इन भाषाओं में द्विवचन के अभाव के कारण समस्या आएगी। इसी प्रकार की कतिपय वचन अनुवाद्यता सम्बन्धी समस्याएँ हिन्दी-अंग्रेजी के मध्य भी मिलती है जिनकी चर्चा प्रस्तुत लेख में की जाएगी।

साधारणतः वचन की कोटि एकत्व और बहुत्व का प्रकटीकरण करती है और प्रायः जागतिक वास्तविकता से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। ज्यादातर भाषाओं में वचन का द्वैतात्मक विभाजन मिलता है- एकवचन और बहुवचन। साधारणतया भाषाओं में एकवचन अचिह्नित और बहुवचन चिह्नित रहता है। कतिपय

भाषाओं में वचन का त्रिविधात्मक विभाजन मिलता है। हिन्दी में दो वर्गों की ही परम्परा रही है- एकवचन एवं बहुवचन। बहुवचन का क्षेत्र व्यापक है और प्रायः प्रसंग से निश्चित होता है। हिन्दी में संज्ञा, सर्वनाम, संज्ञावत प्रयुक्त विशेषण शब्द वचन द्वारा प्रत्यक्षतः प्रभावित होते हैं। क्रिया शब्द का वचन उद्देश्य द्वारा निश्चित होता है। हिन्दी में एक विशेषता आदरार्थक रूप में बहुवचन प्रयोग की भी दृष्टिगत होती है। यहाँ संख्या की बहुवचन से सम्बद्धता नहीं होती। व्यक्ति एक होने पर भी बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। कतिपय वैयाकरण इसे आदरार्थ बहुवचन कहते हैं, उदाहरणार्थः

1. टीचर जी की पत्नी आई हैं।
2. आप बड़े ज्ञानी हैं।
3. वे अच्छे लेखक हैं।
4. उनके पास सभी पुस्तके हैं।

वचन निर्माण के नियम हर भाषा के अपने होते हैं। हिन्दी वचन निर्माण के नियम निम्नलिखित हैं :

## 1. प्रत्यय संयोजन द्वारा

हिन्दी में वचन की अभिव्यक्ति के लिए कोई पृथक् प्रत्यय नहीं होता है। साधारणतया संज्ञा शब्दों में कारक-वचन सूचक प्रत्यय तथा क्रिया में लिंग-वचन सूचक या पुरुष वचन सूचक प्रत्यय वचन के साथ-साथ अन्य व्याकरणिक कोटियों की भी सूचना देते हैं, यथा :

| | |
|---|---|
| बेटा - बेटे | बहन-बहनें |
| लड़की - लड़कियाँ | लता-लताएँ |

प्रत्यय संयोजन के कतिपय नियमों की चर्चा की जा सकती है। सामान्यतः आकारान्त शब्द होने पर बहुवचनत्व - ए प्रत्यय द्वारा लक्षित होता है यथा- घोड़ा-घोड़े। यह नियम संस्कृत से आगत आकारान्त शब्दों पर लागू नहीं होता। भ्राता, अभिनेता आदि शब्द अपने स्वरूप में परिवर्तन नहीं स्वीकारते हैं और बहुवचन में यथावत रहते हैं। इसी प्रकार मुखिया, लाला, दरोगा आदि जातिसूचक शब्दों में भी प्रत्यय संयोजन नहीं होता है। चाचा, नाना आदि सम्बन्ध सूचक शब्द भी इस नियम की परिसीमा में नहीं आते हैं।

व्यंजनान्त शब्द स्त्रीलिंग होने पर -एँ प्रत्यय स्वीकारता है, यथा :

बात - बातें

आँख - आँखें

आकारान्त स्त्रीलिंग में भी यही प्रत्यय दृष्टिगत होता है :

महिला - महिलाएँ

घटा - घटाएँ

शब्द यदि इकारान्त या ईकारान्त है तो -याँ प्रत्यय संयुक्त होता है :

नदी - नदियाँ

साड़ी - साड़ियाँ

उकारान्त या ऊकारान्त शब्दों में -एँ का संयोजन होता है :

गऊ - गउएँ

वस्तु - वस्तुएँ

याकारान्त होने पर मात्र ँ का योजन होता है :

चिड़िया - चिड़ियाँ

बुढ़िया - बुढ़ियाँ

'काया' 'माया' आदि शब्द इस नियम के अपवाद कहे जा सकते हैं।

## 2. स्वतन्त्र शब्द द्वारा

हिन्दी में स्वतन्त्र शब्द द्वारा बहुवचनत्व द्योतन की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है। लोग, गण, वृन्द, जन आदि शब्द यह कार्य करते हैं, यथा-

छात्र - छात्रगण

व्यापारी - व्यापारी लोग

## 3. पुनरुक्ति द्वारा

उपर्युक्त वर्णित दो नियमों के अतिरिक्त पुनरुक्ति द्वारा बहुवचनत्व की अभिव्यक्ति हिन्दी की अपनी विशिष्टता है, उदाहरणार्थ :

क. राम वोट माँगने घर-घर गया। (सभी घर)

ख. उसने कमरे का कोना-कोना छान मारा। (चारों कोने)

4. हिन्दी संज्ञा पदवर्ग विकारी एवं अविकारी दो वर्गों में विभाजित मिलता है। प्रत्यय संयोजन के उपरिवर्णित नियम विकारी वर्ग होने पर कार्य नहीं करते हैं। विकारी संज्ञाओं में (पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग दोनों) - ओं प्रत्यय द्वारा बहुवचनत्व प्रकट होता है, यथा :

घोड़ा - घोड़ों - 'घोड़ों को चारा दे दो।'

चिड़िया - चिड़ियों - 'चिड़ियों के पिंजरे में पानी रख दो।'

पुस्तक - पुस्तकों - 'पुस्तकों को अल्मारी में रख दो।'

इकारान्त या ईकारान्त में -ओं संयुक्त होने पर रूपस्वनिमिक परिवर्तन घटित होता है :

मोती - मोतियों - 'मोतियों की माला'

आदमी - आदमियों - 'आदमियों की भीड़'

अंग्रेजी भाषा में भी हिन्दी की ही भाँति वचन की कोटि दो वर्गों में विभाजित मिलती है। एकवचन (singular) द्वारा एक वस्तु, व्यक्ति स्थान का बोध होता है। यह अचिह्नित रहता है, जैसे- table, boy, garden एकाधिक के लिए बहुवचन (plural) का प्रयोग किया जाता है, यथा- tables, boys, gardens. अंग्रेजी वचन विधान के अपने नियम हैं। परम्परा से बहुवचनवत प्रयुक्त शब्दों के कारण अंग्रेजी वचन विधान में थोड़ी जटिलता आ जाती है, उदाहरणार्थ - slacks, pants, socks सदैव इसी रूप में मिलते हैं। वचन की कोटि द्वारा अंग्रेजी में संज्ञा, (pen ~ pens), सर्वनाम (I ~ we) और क्रिया (was ~ were) प्रभावित होती है। अंग्रेजी में वचन सम्बन्धी निम्नलिखित नियम मिलते हैं :

## 1. प्रत्यय संयोग द्वारा

अंग्रेजी में बहुवचन निर्माण के लिए { - s, - z, -iz, -en, □ } इस सारणी में से कोई एक प्रत्यय जुड़ता है। किस प्रत्यय का संयोजन होगा यह शब्द के अन्तिम स्वन पर निर्भर करता है, जैसे- [- s] का प्रयोग अघोष स्वनों के बाद होता है (cats, books, caps आदि) [- z] का संयोजन समस्त घोष स्वनों में अन्त होने वाले शब्दों में किया जाता है (bees, keys, pens आदि) [- i z] प्रत्यय स्पर्श संघर्षी स्वनों के बाद संयुक्त होता है (roses, boxes, bushes आदि)। कई शब्दों (जैसे fish, deer, hair आदि) में [- □ ] शून्य प्रत्यय का संयोजन माना जाता है।

## 2. स्वर परिवर्तन द्वारा

अंग्रेजी में कुछ बहुवचन स्वर परिवर्तन द्वारा निर्मित होते हैं, यथा-

man - men

mouse - mice

3. अंग्रेजी के पुरुषवाचक सर्वनामों में दो बहुवचनसूचक रूप मिलते हैं। इनका निर्माण नवीन शब्द के प्रयोग द्वारा होता है-

I - we

he
she → they
it

4. अंग्रेजी में क्रिया पदवर्ग मुख्य एवं सहायक वर्ग में विभाजित दृष्टिगत होता है। was - were को छोड़कर अन्य किसी भी क्रिया पर वचन का प्रभाव नहीं पड़ता है।

हिन्दी - अंग्रेजी भाषाओं के वचन विधान के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि इन भाषाओं में यद्यपि वचन का वर्गीकरण (एकवचन-बहुवचन) समान है किन्तु अन्य नियमों में भिन्नता मिलती है। हिन्दी में जहाँ संज्ञा (लड़का-लड़के), सर्वनाम (वह -वे), कतिपय विशेषण (लम्बा-लम्बे) क्रिया (है-हैं) सभी पदवर्गों पर

किसी न किसी अंश में वचन का प्रभाव पड़ता है वहाँ अंग्रेजी में मुख्य रूप से संज्ञा **(girl - girls)**, कतिपय सर्वनाम **(I - we)** सिर्फ एक क्रिया **(was - were)** वचन द्वारा प्रभावित होती है। हिन्दी में संज्ञा के विकारी-अविकारी रूपों के आधार पर वचन विधान के नियम में भिन्नता मिलती है, यथा :

अविकारी एकवचन - यह लड़का खाना खाता है।

अविकारी बहुवचन - ये लड़के खाना खाते हैं।

विकारी एकवचन - इस लड़के ने खाना खाया।

विकारी बहुवचन - इन लड़कों ने खाना खाया।

इन वाक्यों का अंग्रेजी में अनुवाद व्यतिरेक के बिन्दुओं की ओर संकेत करेगा :

(i) This boy eats food.

(ii) These boys eat food.

(iii) This boy has eaten food.

(iv) These boys have eaten food.

अंग्रेजी में संज्ञा के रूप समान रहते हैं। परम्परा से बहुवचन में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द हिन्दी में एकवचन में ही रहते हैं, जैसे :

Give me my scissors.

मुझे मेरी कैंची दो।

हिन्दी में 'वह' सर्वनाम बहुवचन में 'वे' रूप में प्रयुक्त होता है परंन्तु कभी-कभी आदरार्थक वाक्य में 'वे' का प्रयोग भी एकवचन के लिए किया जाता है, जैसे :

| | | |
|---|---|---|
| (i) वह जाता है। | <u>He</u> goes. | (एकवचन) |
| (ii) वे जाते हैं। | <u>They</u> go. | (बहुवचन) |
| (iii) वे मेरे मास्टर जी के बेटे हैं। | <u>He</u> is my teacher's son. | (एकवचन) |

इसी प्रकार हिन्दी में कभी-कभी वक्ता अपने लिए 'हम' का प्रयोग करता है। ऐसे वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद एकवचन में ही किया जाता है, यथा :

(i) हम यह नहीं खाते हैं।

I donot eat this.

हिन्दी में क्रिया रूप के वचन का अन्वय कर्तृवाच्य में कर्ता के वचन के साथ (राम स्कूल जाता है), कर्मवाच्य में कर्म के वचन के साथ (पुस्तकें जल गईं) होता है। भाववाच्य में क्रिया सदैव पुल्लिंग एकवचन में रहती है, यथा - उससे यह सहा नहीं जाता।

इन तीनों को अंग्रेजी में अनूदित करने पर निम्न वाक्य मिलते हैं :

(i) Ram goes to school.

(ii) The books have been burnt.

(iii) He can not bear this.

हिन्दी भाषा में संज्ञा शब्दों की वचन विवक्षा सामाजिक प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है। हिन्दी भाषी के मानस पर सामाजिक स्तरों के भेदभाव ने इतना गहरा प्रभाव डाला है कि भाषा भी इन सामाजिक प्रतिमानों से अछूती नहीं रहती है। फलतः हिन्दी में एकवचन के लिए भी सम्मान सूचक बहुवचन क्रिया बोली जाती है-

(i) माँ खाना बना रही हैं।

इस प्रकार के वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद समस्या उत्पन्न करता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिन्दी और अंग्रेजी का वचन विधान एक सा नहीं है। उसमें व्याकरणिक के साथ-साथ कतिपय सांस्कृतिक सामाजिक वैविध्य मिलते हैं। अतः अनुवादक को हिन्दी से अंग्रेजी या अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करते समय सतर्कता रखनी पड़ती है।

* * *

# कोशीय समतुल्यता की समस्याएँ
## अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद के सन्दर्भ में

अनुवाद प्रक्रिया सदैव किसी स्रोत भाषा से किसी लक्ष्य भाषा में एक दिशा की ओर घटित होती है। प्रसिद्ध विद्वान जे॰ सी॰ कैटफोर्ड (1965 :20,21) के अनुसार, 'जब किसी भाषा की पाठ सामग्री का प्रतिस्थापन दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ सामग्री द्वारा किया जाए' तो उसे अनुवाद की संज्ञा देते हैं। स्पष्ट है कि कैटफोर्ड अनुवाद कार्य में केन्द्रीय समस्या समतुल्य पाठ सामग्री की खोज मानते हैं। अनुवाद के विविध प्रकारों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि स्रोत भाषा के व्याकरण और शब्दकोश का लक्ष्यभाषा के समतुल्यों द्वारा प्रतिस्थापन 'पूर्ण अनुवाद' कहलाता है। विषयार्थ एवं गुणार्थ का वाहक होने के कारण वे शब्दकोश (कोशीय इकाइयों) को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए नाइडा का मानना है कि 'अनुवाद का सम्बन्ध स्रोत भाषा के सन्देश का पहले अर्थ और फिर शैली के धरातल पर लक्ष्य भाषा में निकटतम स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान प्रस्तुत करने से होता है।' स्पष्ट है कि अनुवाद में समतुल्य कोशीय इकाई के चयन को प्रधानता दी जाती है और अनुवाद कार्य की सफलता मुख्य रुप से कोशीय अर्थ की प्रकृति एवं अनुवाद प्रक्रम पर निर्भर करती है।

कोशीय अर्थ के विभिन्न सिद्धान्तों को समन्वित कर ज़गुस्ता (1971:21) ने तीन महत्त्वपूर्ण घटकों का उल्लेख किया जो कोशीय अर्थ का निर्माण करते हैं :

(क) अभिधेयार्थ (denotative meaning)

(ख) गुणार्थ (connotative meaning)

(ग) प्रयोग परास (range of application)

कोशीय इकाई (शब्द) तथा उसके द्वारा संकेतित भाषेतर इकाई (जागतिक उपादान) के मध्य का सम्बन्ध अभिधेयार्थ कहलाता है जो सीधा/प्रत्यक्ष न होकर आरव्येय के माध्यम से अप्रत्यक्ष रुप में घटित होता है। कोई आख्येय जागतिक उपादान की अनेक विशेषताओं में से कुछ की ओर ही संकेत करता है। इन विशेषताओं का पूंजीभूत रुप ही अभिधेयार्थ के घटकों या आधारित अभिलक्षणों का निर्माण करता है, जैसे- 'कुर्सी' नामक वस्तु के अनेक गुण हैं- 'चार टाँग, एक सतह वाली जिसमें टेक के लिए पीठ और हाथ रखने के लिए हत्थे हो सकते हैं और जो एक व्यक्ति के बैठने के काम आती है।' विभिन्न भाषाओं के शब्दों का परीक्षण इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि समान सन्दर्भपरक अर्थ वाले शब्दों के अभिधेयार्थ भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, उदाहरणार्थ अंग्रेजी शब्द **aunt** का अर्थ **'father's or mother sister or uncle's wife'** है जब कि हिन्दी में अलग-अलग पारिवारिक सम्बन्ध के आधार पर 'ताई, चाची, मौसी, बुआ आदि शब्द मिलते हैं। अंग्रेजी शब्द **'cousin'** का अभिधेयार्थ अत्यन्त विस्तृत है- 'किसी के माता या पिता के भाई या बहन की सन्तान (स्त्री अथवा पुरुष)। अंग्रेजी में यह शब्द लिंग, वय और माता-पिता से सम्बन्ध का कोई परिचय नहीं देता जबकि हिन्दी में इसके एकाधिक समतुल्य मिलते हैं, जैसे :

| | | |
|---|---|---|
| तयेरा भाई : | तयेरी बहन | लिंग एवं पिता से सम्बन्ध के आधार पर |
| चचेरा भाई : | चचेरी बहन | लिंग एवं पिता से सम्बन्ध के आधार पर |
| फुफेरा भाई : | फुफेरी बहन | लिंग एवं पिता से सम्बन्ध के आधार पर |
| ममेरा भाई : | ममेरी बहन | लिंग एवं माता से सम्बन्ध के आधार पर |
| मौसेरा भाई : | मौसेरी बहन | लिंग एवं माता से सम्बन्ध के आधार पर |

(ख.1) कोशीय अर्थ के ऐसे समस्त अभिलक्षण जो अभिधेयार्थ के व्यतिरेकी मूल्य की कुछ वृद्धि करते हैं गुणार्थ कहलाते हैं यथा 'उसे अपनी कुर्सी बहुत प्यारी है' वाक्य में 'कुर्सी' पद का भाव जुड़ गया है वह मात्र बैठने की वस्तु नहीं है। इस प्रकार गुणार्थ में व्यक्तिगत एवं सांवेगिक साहचर्य भी आते हैं। कतिपय विद्वानों ने संवेगार्थ और शैलीगत अर्थ को गुणार्थ में नहीं समेटा परन्तु यह उचित नहीं कहा जा सकता है। किसी भाषा का भौगोलिक, सामाजिक, शैलीगत भिन्न रुप; कोई नवीन रचा गया शब्द; वक्ता के विषय में अधिक

सूचना देने वाला या विषय को रोचक और शक्तिशाली ढ़ंग से प्रस्तुत करने वाला शब्द आदि सभी की गणना गुणार्थ में होती है। अंग्रेजी शब्द aunt का गुणार्थ है 'an old woman; a woman to whom one can turn for sympathy, advice, practical help' जो उसके अभिधेयार्थ से भिन्न है। aunt के हिन्दी समतुल्यों द्वारा भी इस अर्थ की व्यंजना नहीं होती है। इसी प्रकार पानी, नीर, जल, अम्बु, तोय और उदक समान अभिधेयार्थ भिन्न गुणार्थ वाले शब्द हैं।

(ग.1) प्रयोग परास से तात्पर्य किसी शब्द के प्रयोग क्षेत्र की सीमा से है अर्थात् किस अर्थ में उसका प्रयोग किया जा सकता है और किसमें नहीं, जैसे- खाना खाना, भोजन करना, जीमना आदि समान अभिधेयार्थ वाले शब्द हैं। अंग्रेजी में 'to eat' क्रिया जिनकी समतुल्य है इन शब्दों का प्रयोग परास भिन्न-भिन्न हैं जहां सामान्य व्यक्ति के लिए 'खाना खाना' और 'भोजन करना' का प्रयोग किया जाता है वहाँ ब्राह्मण और दामाद के लिए 'जीमना' का प्रयोग किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति अतिशय शीघ्रता से खाए तो 'ठूँसना' और 'भकोसना' का भी प्रयोग मिलता है जिनका निकटम अंग्रेजी समतुल्य 'to eat' ही होगा।

कोशीय अर्थ के इन तीन घटकों के कारण उत्पन्न जटिलता के अतिरिक्त भाषाओं की विषम आकृति अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में समतुल्य खोजने में समस्या उत्पन्न करती है। भाषाओं की रूपात्मक विषमता उनके आकृतिगत भेदों की ओर संकेत करती है और विशेष रुप से कोशीय अर्थ के स्तर पर प्राप्त वैविध्य को सन्दर्भित करती है। रूपात्मक विषमता (anisomorphism) का प्रमुख कारण सांस्कृतिक शब्द होते हैं जो संस्कृति विशेष से सम्बन्धित मानसिक एवं सूक्ष्म और भौतिक एवं स्थूल अभिधेय की ओर संकेत करते हैं तथा प्रायः दूसरी (लक्ष्य भाषा) संस्कृति में अनुपस्थित होते हैं, जैसे- हिन्दी साहित्य में प्रचलित पेड़-पौधों, फलों के नाम (छुइमुइ, झरबेरी, कसेरु), पक्षियों, जानवरों के नाम (स्याही, गौरैया, काकेर) अथवा मंगलसूत्र, सिन्दूर, बिछुआ जैसे सांस्कृतिक मद जो स्त्री की विवाहित अवस्था की सूचना देते हैं; देवि देवताओं के नाम जो हिन्दु पुराणशास्त्र के अभिन्न अंग हैं (नारद, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा आदि)। इन शब्दों के समतुल्य भिन्न संस्कृति वाली भाषा में ढूँढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव कार्य है।

संस्कृति आश्रित ये शब्द अनुवाद में तीन कारणों से समस्या उत्पन्न करते हैं- (अ) अभिधेय क्षेत्र की अनुपस्थिति अर्थात् जब लक्ष्य भाषा में अभिधेय अनुपस्थित होने के कारण समतुल्य न प्राप्त हो, जैसे- हिन्दी जनेऊ, पायल, हवन, उपनयन के अंग्रेजी समतुल्य नहीं मिलते हैं। (आ) कभी-कभी अभिधेय उपस्थित होने पर भी अर्थ में भिन्नता होती है, यथा- हिन्दी चावल, भात और अक्षत के लिए अंग्रेजी में 'rice' समतुल्य है किन्तु यहाँ अर्थ में भिन्नता है :

चावल - कच्चा चावल

भात - पका चावल

अक्षत - अखण्डित देव पूजा में प्रयोग किया जाने वाला चावल।

(इ) कुछ स्थलों पर सांस्कृतिक शब्दों के अभिधेय संगठन में भिन्नता के कारण अनुवाद में समस्या आती है, जैसे- अंग्रेजी `morning' शब्द का प्रयोग भोर से लेकर बारह बजे तक किसी समय के लिए किया जा सकता है जबकि हिन्दी में प्रातः या सुबह शब्दों का प्रयोग भोर से लेकर दस बजे तक के लिए ही किया जाता है। इसी प्रकार aunt के समतुल्य या uncle के समतुल्यों में अभिधेय संगठन में भिन्नता है। यही नहीं एक समाज में घटित सांस्कृतिक परिवर्तन भी शब्दों के अभिधेय संगठन में परिवर्तन लाते हैं परिणामतः भिन्न-भिन्न काल के साहित्य में प्रयुक्त इन परिवर्तित शब्दों के समतुल्य लक्ष्य भाषा में भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे- वैदिक साहित्य में 'असुर' शब्द देववाचक था जबकि लौकिक संस्कृत में राक्षस सूचक हो गया। प्राचीन हिन्दी साहित्य में गाँव में निवास करने वाला 'गंवार' कहलाता था जबकि आधुनिक समय में इसका प्रयोग 'कम अक्ल-बुद्धू' अर्थ में किया जा रहा है। लक्ष्य भाषा में समतुल्य होने पर भी सांस्कृतिक भिन्नता के कारण प्रायः रूपात्मक विषमता मिलती है, जैसे- हिन्दी 'ईश्वर/भगवान' का अंग्रेजी समतुल्य 'उद्' है किन्तु जहाँ हिन्दु संस्कृति में ईश्वर की संकल्पना बहुदेववादी है वहाँ अंग्रेजी संस्कृति एकेश्वरवादी है।

स्पष्ट है कि कोशीय अर्थ की जटिल प्रकृति एवं भाषाओं की रूपात्मक विषमता अनुवाद करते समय कोशीय समतुल्य इकाइयों के चयन को प्रभावित करती है। कोशीय समतुल्य लक्ष्य भाषा की एक ऐसी कोशीय इकाई है जिसका अर्थ स्रोत भाषिक कोशीय इकाई के समान होता है तथा पूर्ण समतुल्यता कोशीय अर्थ के तीनों

घटकों- अभिधेयार्थ, गुणार्थ और प्रयोग परास में समानता एवं स्रोत भाषा में व्यवहृत विभिन्न सन्दर्भों में एकरुपता की आकांक्षा करती है। यदि लक्ष्य भाषा कोशीय इकाई स्रोत भाषा कोशीय इकाई से एकाधिक घटकों में भिन्नता रखे तथा सभी सन्दर्भों में व्यवहृत न हो तो उसे आंशिक समतुल्यता की संज्ञा देते हैं। कोशीय समतुल्यों के अभाव की स्थिति में या तो स्रोत भाषा की कोशीय इकाई को ग्रहण कर लिया जाता है अथवा नवीन भाषिक अभिव्यक्ति की रचना की जाती है। ध्यातव्य है कि अनुवाद में चाहे स्रोत भाषा कोशीय इकाई का ग्रहण किया जाए अथवा नवीन इकाई की रचना की जाए इकाई द्वारा प्रेषित सूचना में परिवर्तन अवश्य होता है। नाइडा के अनुसार यह तीन दिशाओं में होता है- (अ) सूचना का संक्षिप्तीकरण (आ) सूचना का विस्तृतीकरण और (इ) सूचना में तिरछापन। इसका कारण भी कोशीय अर्थ की जटिल प्रकृति और भाषाओं के बीच स्थित रूपात्मक विषमता है।

लेख के इस भाग में हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद के सन्दर्भ में सूचना से सम्बन्धित इन तीन विकृतियों की चर्चा की गई है। हिन्दी के वाक्य 'कल मेरे ताऊ दिल्ली जाएँगे' का अंग्रेजी अनुवाद होगा- `Tomorrow my uncle will go to Delhi' यहाँ 'ताऊ' अर्थात् 'वक्ता के पिता के बड़े भाई' के लिए प्रयुक्त uncle समतुल्य सूचना को संक्षिप्त कर रहा है।

अंग्रेजी का एक वाक्य लें- My cousin came yesterday. हिन्दी में इसके दो समतुल्य हैं :

(i) मेरी चचेरी बहन कल आयी।

(ii) मेरा चचेरा भाई कल आया।

यहां cousin के लिए ममेरा/फुफेरा आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ सूचना का विस्तृतीकरण हुआ है साथ ही सूचना में तिरछापन भी है क्योंकि cousin शब्द लिंग का ज्ञान नहीं करता जबकि अनूदित वाक्य में उसकी स्पष्ट व्यंजना है। हिन्दी 'धर्म' शब्द के लिए religion शब्द का प्रयोग सूचना को संक्षिप्त कर उसमें तिरछापन लाता है क्योंकि कोश में धर्म के- 'शुभ कर्म, सुकृत, उत्तम आचार, कर्तव्य, स्वभाव, पथ विवेक' आदि अर्थ निरूपित हैं जबकि religion का अर्थ `belief in, recognition of, a higher unseen controlling power or powers है। एक अन्य उदाहरण लें हिन्दी नाशपाती, नागा, बबूगोशा, चुसनी चार

प्रकार के फलों के लिए अंग्रेजी में 'pear' समतुल्य मिलता है जो सूचना को संक्षिप्त करता है। ये सभी उदाहरण भाषा की रूपात्मक विषमता और हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद में तदजन्य कोशीय समतुल्यता की समस्या की ओर संकेत करते हैं।

***

# सहायक ग्रन्थ

## English

Anonymous 1977 : *Gender and Number in English*. (unpublished dissertation).

Atkinson, E.T. 1882 : *The Himalayan District of North-West Provinces of India*. Vol II, New Delhi, Cosmo Publications.

Benedict, P.K. 1972 : *Sino-Tibetan: A Conspectus*. New York, Cambridge University Press.

Bisht, B.S. 1994 : *Tribes of India, Nepal Tibet Boderland: A Study of Cultural Transformation*. New Delhi, Gyan Publishing House.

Bloomfield, L. 1926 : A Set of Postulates for the Science of Language, *Language* Vol. 2.

Bloomfield, L. 1933 : *Language*, The Compton Printing Works, London Ltd., London.

Bora, H.S. 1988 : *Cave Dwellers of the Himalayas-Rajis, a primitive tribal group of Uttar Pradesh,* paper presented in the seminar, Tribal situation in Uttar Pradesh, Yojana Bhawan, Lucknow.

Campbell & Muntzel, M.C. 1980 : The Structural Consequences of Language Death pp 181-196.

*Investigating Obsolescence : Studies in Language Contraction and Death*. Cambridge University Press.

Catford, J.C. 1965 *Linguistic Theory of Translation*. Oxford University Press, London.

Crystal, D. 2000 *Language Death*. University of Cambridge, UK.

Dorian, N.C. 1980 *Investigating Obsolescence Studies in Language Contraction & Death*. Cambridge University Press.

Fortier, J. 2000 Monkey's thigh is the Shaman's meat : ideologies of sharing among the Raute of Nepal : *The Social Economy of Sharing : Resource Allocation and Modern Hunter- Gatherers* (Senri Ethnological series). ed. by Geroge W. Wenzel, Grete Hovelsrud- Broda, and N. Kishigami, 13-17. Osaka; National Museum of Ethnology.

Fortier, J. & Rastogi, K. 2004 Sister Languages? Comparative Phonology of Two Himalayan Languages, *Nepalese Linguistics*, Vol. 21 pp. 42-52.

Grierson, G.A. 1903-1928 *Linguistic Survery of India*.

Hale, 1982 *Research on Tibeto-Burman Languages*. Berlin : Mouton.

Harris, Z.S. 1951 *Structural Linguistics*. Phoenix Books, The University of Chicago Press, Chicago.

Hockett, C.F. 1968 *The State of the Art*. Mouton & Company, The Hague, Paris.

James, C. 1970 *Contrastive Analysis*. London Longman.

Jesperson, O. *The Philosophy of Grammar*. Allen and Unwin, London.

Lado, R. 1957 *Linguistics Across Cultures*. Ann Arbor, University of Michigan Press.

La Polla, Randy J. 1994 "Parallel grammaticalizatios in Tibeto-Burman languages: evidence of Sapir's 'drift'." *Linguistics of the Tibeto Burman Area* 17.1:61-80.

Majumdar, 1940 *Races and Cultures of India*, University Publishers, Lucknow.

Matisoff, James A. (ed.) 1995 *Languages and Dialects of Tibeto-Burman. Berkeley* : Sino-Tibetan Etymological Dictionary and Thesaurus Project, University of California.

Nida, E.A. 1975 *Language Structure and Translation*, Stanford University Press, California.

Pandey, B.D. 1993 *History of Kumaun: English version of "Kumaun ka itihas"*. 2 vols. Almora, U.P. India: Shyam Prakashan, Shree Almora Book Depot.

Pokaria, D.S. 1998 Annual report on the research project 'Kumanu Himalaya kii Raji Janjaatii kaa Saamaajik evam Bhaashaa vaigyaanik Adhyayan'. (Unpublished).

Rastogi, K. 2000 A Socio-Linguistic Study of Raji : *Man and Life* vol : 30. 89-94.

2001 Language Shift : a Case Study of Raji. *International Journal of Dravidian Linguistics* Vol xxxi : 2. 49-54.

2002 Raji : Language of a Vanishing Himalayan Tribe *Linguistics of the Tibeto-Burman Area* Vol 25.2

Sapir, E. 1921 *Language, An Introduction to the Study of Speech*, A Harvest Book, harcourt, Brace and Co., New York.

Saussure, F. 1960 *Course in General Linguistics* C. Bally and A. Sechehaye (ed.) Pater Owen Ltd., London.

Schmidt, A. 1985 *Young People's Dyiral : An Example of Language Death from Australia*. Cambridge University Press.

Sharma, D.D. 1994 *A Comparative Grammar of Tibeto-Burman Languages of Himachal Pradesh and Uttarakhand*. Studies in T-B Languages iv. New Delhi, Mittal Publication.

Sharma, Shobha R. *Madhya Himalaya ki Raji Boli* ("The Raji Tribe of the Mid-Himalayan Region"). PahaaR-2 pp. 145-56.

Traill, C.W. 1823 "Report on Kumaun." *Asiatic Researches : Comprising History and Antiquities, the Arts, Sciences, and Literature of Asia*. 16:150.

Van Driem 2001 *Languages of the Himalayas*.

Zugutsa, L. 1971 *Manual of Lexicography*. Mouton, The Hague.

# हिन्दी

कुमार सुरेश 1986 अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

गुरू कामता प्रसाद 2029 सम्वत् हिन्दी व्याकरण, काशी।

जायसवाल महेश प्रसाद 1981 आधुनिक भाषाविज्ञान का इतिहास, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

तिवारी भोलानाथ और गोस्वामी कृष्ण कुमार 1980 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली।

रस्तोगी कविता 2000 समसामयिक भाषाविज्ञान, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

रस्तोगी कविता 2003 भाषाविज्ञान परिभाषा कोश, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

रेड्डी विजय राघव 1986 व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

शुक्ल हीरालाल 2001 आदिवासी भाषाविज्ञान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

श्रीवास्तव, भोलानाथ तिवारी 1997 हिन्दी भाषा संरचना और प्रयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

सिंह सूरजभान 1985 हिन्दी का वाक्यात्मक व्याकरण, साहित्य सहकार, दिल्ली।

भारतीय भाषाओं का अंर्तसम्बन्ध
डा0 जी. सी. गुप्ता

दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य
प्रो0 कालीचरन 'स्नेही'

मीडिया लेखन कला
प्रो0 सूर्य प्रसाद दीक्षित, डा0 पवन अग्रवाल

संचार दर्पण
डा0 आर0 सी0 त्रिपाठी, ऊषा सक्सेना

वैचारिकी भाग–2
कृपा शंकर शुक्ल, सूर्य कुमार (आई.पी.एस.)

अमेरिकी प्रवासी भारतीय : हिन्दी प्रतिभाएं भाग–1
डा0 उषा गुप्ता

अमेरिकी प्रवासी भारतीय : हिन्दी प्रतिभाएं भाग–2
डा0 उषा गुप्ता

सिद्धान्तशिरोमणिः
प्रो0 बी. के. शुक्ल

शीर्घबोधः
डा0 बी0के0 शुक्ल

अक्षरा
डा0 जगदीश अवस्थी

भारतीय चिन्तन में कर्तव्य की अवधारणा
प्रो0 सुरेन्द्र सिंह, डा0 ओ0 पी0 शास्त्री

योग तथा मानसिक स्वास्थ्य
प्रो0 पी0 डी0 मिश्र, डा0 बीना मिश्रा

हिन्दू विज्ञान एवं विधि
प्रो0 डी0 सी0 वार्ष्णेय

प्राचीन भारतीय समाज
डा0 एस0 के0 जायसवाल

NEW ROYAL BOOK CO.

**New Royal Book Company**

Publisher of Academic & Educational Books

1st Floor, Shah Trade Centre, 32/16, Valmiki Marg, Lalbagh,
Lucknow-226 001 (U.P.) INDIA
Phones: +91 522 2615607, 6570731
E-mail: nrbc@rediffmail.com

Visit us at: www.nrbc.in

ISBN 978-81-89267-74-2

9 788189 267742

Rs. 495